किताब महल निबंध माला— ७

मशाल

रामवृक्ष बेनीपुरी

किताब-महल
इलाहाबाद—बम्बई
१९४९

भूमिका

भिन्न-भिन्न विषयों पर, भिन्न-भिन्न प्रेरणाओं से मेरे मन में जो विचार उठे, मैं उन्हें उसी क्रम में कलमबंद करता गया और अन्ततः उनके जो रूप तैयार हुए, वे आपके सामने प्रस्तुत हैं।

निबंध का जो परम्परागत स्वरूप है, उससे ये पृथक् पड़ते हैं। ये रेखाचित्र भी नहीं हैं। क्या इन्हें विचार-चित्र कहा जा सकता है?

यह 'मशाल' अपनी ज्योति से कुछ नये लोगों के लिए किसी नये पथ का निर्देश कर सकी, तो मेरा परिश्रम सफल। बस।

रामवृक्ष बेनीपुरी

पटना
१०। १। ४९

मिलाकर वह भी अभिनन्दन कर उठा होगा। उसने देखा होगा दुपहरिया का दिपदिपाता प्रकाश-पुञ्ज—किसी वृक्ष की छाया तले बैठे वह एकटक उसे देखता और उसकी चकाचौंध से चमत्कृत होता रहा होगा! फिर, उसने देखी होगी संध्या—वही लालिमा, वही पक्षियों का कल-गान। लेकिन, इस लालिमा को देखते ही वह सहम उठा होगा—

क्यों?

रात आ रही है रात! वह अंधकार की जननी।

अंधकार—कितना बड़ा आतंक उसके लिए। वही अंधकार, जब बाघ सिंह दहाड़ेंगे, दिग्गज चिग्घाड़ेंगे, अजदहे फुत्कारेंगे। फिर यदि उस अंधकार में कभी आँधी-तूफान, झड़-वर्षा का सामान हो गया, तब तो, उसके लिये मानो प्रलय की घड़ी पहुँची। कल्पना करो, वह उस समय कैसा थर-थर काँपता होगा, उसका छोटा-सा प्राण उसकी विशाल दानवी देह में किस तरह व्याकुल हो उठता होगा। अजी, मनोवैज्ञानिकों से पूछो, उस अंधकार युग का कितना आतंक अब तक तुम पर बना हुआ है, ओ विद्युत् की जगमग में रहनेवाले जीवो! अब तक बना हुआ है और न जाने कब तक बना रहेगा!!

हाँ ज़रा अपनी कल्पना को पीछे ले जाओ, तब अपनी मुट्ठी की इस छोटी सी चीज़ की महत्ता को इयत्ता समझ में आये!

तब!

× × × ×

अंधकार ही तो नहीं; पंच-प्रकृतियों में से यह सबसे प्रबल 'पावक' है

१
मशाल

मशाल—ज्योति का प्रतीक !

—वह ज्योति जो हमारी मुट्ठी में हो !

हाँ, मशाल मनुष्य की उस विजय की सूचना है, जब उसने पंच-प्रकृतियों—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर—में सबसे भयानक पावक, अग्नि—पर कब्जा किया, उसे मुट्ठी में लिया और विधाता को चुनौती दी !

विधाता को—चुनौती !

लो, ओ विधाता, दिन बनाकर तुम्हें सन्तोष नहीं हुआ, तो तुमने रात बनाई—प्रकाश तुम्हारे लिए काफी नहीं था, तुमने अंधकार बनाया। अंधकार बनाया और हमें उसमें भटकने, तड़पने, बिल-बिलाने, चिल्लाने को छोड़ दिया। हम चिल्लाते रहे—तमसो मा ज्योतिर्गमय ! और तुम—तुम कभी तारे की झिल-मिल, चाँद की चक-की लुक छिप और जुगनू की भुक-भुक के बहाने हमारे पर हँसते रहे ! ओहो, ठहाके मारते रहे ! किन्तु, अब ! मैं यह मशाल—यह ज्योतिर्लिङ्ग—है, अरे ! बोलो, बुड्ढे !

नहीं बोलते, तो सुनो—

अब, हम इस ज्योतिपुंज को हाथ में लेकर तुम्हारी अंजन-अवना कुहू निशा में भी अपना रास रचायेंगे।

तुम्हारे अंधकार की सेना हमारे इस प्रकाशपुञ्ज को देखते ही इस तरह पलायित होगी, जिस तरह शिकरे के पर की फटफटाहट सुनते ही पत्ती-समूह !

यही नहीं, जहाँ तुम्हारे तारे, बिजली, जुगनू की कौन बात, बारह कला चाँद और सोलह कला सूरज—वह जिसे भुवन भास्कर कहलाने का घमंड है— हार मानेगा, व्यर्थ सिद्ध होगा, वहाँ भी हमारा मशाल जगमग करेगा ज्योति का बाजार लगायेगा ! हम इसे अपने हाथ में लेकर भयंकर भूधर की तमिस्रामयी हृदय-स्थली—भयंकर गुफा—में ही प्रवेश नहीं करेंगे, पृथ्वी की छाती फोड़कर उसकी धुक-धुकी की भी गिनती करेंगे !

धन्य है हमारी मशाल—धन्य हैं हम, इसके स्रष्टा !

× × ×

मशाल—ज्योति का प्रतीक !

गैस और विद्युत की दुनिया में रहने, रमने वालो ! ज़रा अपनी कल्पना को पीछे ले जाओ, तब तुम्हें मशाल का महत्व मालूम पड़े !

कल्पना करो, उस ज़माने की जब पहले-पहल मानव इस धरा-धाम पर अवतरित हुआ होगा !

उसने देखी होगी उषा की लालिमा—पखेरुओं के कंठ-से-कंठ

मिलाकर वह भी अभिनन्दन कर उठा होगा। उसने देखा होगा दुपहरिया का दिपदिपाता प्रकाश-पुञ्ज—किसी वृक्ष की छाया तले बैठे वह एकटक उसे देखता और उसकी चकाचौंध से चमत्कृत होता रहा होगा! फिर, उसने देखी होगी संध्या—वही लालिमा, वही पक्षियों का कल-गान। लेकिन, इस लालिमा को देखते ही वह सहम उठा होगा—

क्यों?

रात आ रही है रात! वह अंधकार की जननी।

अंधकार—कितना बड़ा आतंक उसके लिए। वही अंधकार, जब बाघ सिंह दहाड़ेंगे, दिग्गज चिग्घाड़ेंगे, अजदहे फुत्कारेंगे। फिर यदि उस अंधकार में कभी आँधी-तूफान, झड़-वर्षा का सामान हो गया, तब तो, उसके लिये मानो प्रलय की घड़ी पहुँची। कल्पना करो, वह उस समय कैसा थर-थर काँपता होगा, उसका छोटा-सा प्राण उसकी विशाल दानवी देह में किस तरह व्याकुल हो उठता होगा। अजी, मनोवैज्ञानिकों से पूछो, उस अंधकार युग का कितना आतंक अब तक तुम पर बना हुआ है, ओ विद्युत् की जगमग में रहनेवाले जीवो! अब तक बना हुआ है और न जाने कब तक बना रहेगा!!

हाँ ज़रा अपनी कल्पना को पीछे ले जाओ, तब अपनी मुट्ठी की इस छोटी सी चीज़ की महत्ता को इयत्ता समझ में आये!

तब!

× × × ×

अंधकार ही तो नहीं; पंच-प्रकृतियों में से यह सबसे प्रबल 'पावक'

भी क्या उसके लिए कम आतंक, कम विभीषिका का कारण रहा होगा !

वृषादित्य के तरल ताप से तप्त, किसी घने वृक्ष की छाया में बैठा, वह अपनी जेठ की दुपहरिया गवाँ रहा होगा—शरीर पसीने से नहलाया, नसें ढीली पड़ीं, रह रहकर आँखें झिप जातीं ! लू ! हवा में मृग-मरीचिका नहीं, मालूम होता असंख्य गेहुअन फन काढ़े डोल रहे हों—वही रङ्ग वही परिणाम ! गेहुअन का काटा शायद बचे भी, किन्तु, इसका छुआ ?—फिर भला, इस बेचारे मानव को छाया छोड़कर दूसरा चारा ही क्या रहा होगा ?

कि, इतने ही में—इतने ही में चट्-चट् की आवाज़ से वह चौंक पड़ा होगा।

अरे, यह कैसा बादल जो ज़मीन से आकाश की ओर लगातार बढ़ रहा है। कुछ चिरायन सी गन्ध है—इन बादलों के बीच रह-रहकर रोशनी का अम्बार है—यह ज्वाला ! अब तो ज्वाला ही ज्वाला ! पेड़-पौधे, जीव-जन्तु जो सामने आते सबको उदरस्थ करती यह बार-बार आकाश को भी निगलने को ऊपर उचकती, उचलती है।

चट्चट्-चट्चट्, धूधू-धूधू, हाहा-हूहू !

समूची वनस्थली में भगदड़ मच गई है। सभी जीव जन्तु प्राण लेकर भाग रहे हैं। हाथी-सिंह, बाघ गाय, भेड़िये-भेड़, नेवले-साँप, बाज-बटेर, सब भागे जा रहे हैं—एक साथ ! सबको अपनी जान की फ़िक्र है, [illegible] की कौन पूछे। किन्तु, क्या भागने में भी ये सफल [illegible] उसकी चपेट में तो आही जाते हैं, उड़ती चिड़ि[illegible] नीं से बेहोश हो पके फल से गिरते और भस्म हो[illegible]

मानव, मानव—जिसे दो ही पैर हैं और पर भी नहीं, वह मानव क्या करे, कहाँ जाय मानव ?

ओहो, वह कैसा होगा दिन, जब मानव ने इस प्रलयंकारी पावक को, अपनी बुद्धि-बल से, मुट्ठी में पकड़ा होगा ! जिस दिन मशाल बनी, दुनिया की सबसे बड़ी क्रान्ति उसी दिन हुई !

सभ्यता का प्रारम्भ भी उसी दिन से हुआ !

जला हुआ बन खेत हुआ, खेत में घर बना, घर में मशाल जली। छप्पन-भोग, चौसठ-कला, चौरासी-आसन, कहाँ तक उनकी गिनती की जाय जो उसके इर्द-गिर्द आप-ही-आप आ जुटे !

अपने आस पास सभ्यता का पसारा देखो—"समुझत बनै, जाइ नहि बरनी !"

× × ×

मशाल—ज्योति का प्रतीक !

वह ज्योति जो हमारी मुट्ठी में हो !

खर-पात की एक लम्बी-सी पुलिया—चकमक पत्थर के दो छोटे-से टुकड़े !

लकड़ी का एक लम्बा डंडा—चरबी जिसके सिरे पर लपेटी हुई हो। किसी ढेम से हुआ लो और जलाते रहो—आनन्द मनाते रहो !

फिर 'तूल' और 'स्नेह'। दियासलाई की छोटी-सी पेटी !

किन्तु अब ?

"अब तो धात का चमचमाता एक छोटा-सा गुम्मा— जेब में रखे रहो और जब चाहो, बटन दबाओ = भुक् !

बेचारा अंधकार—

उसकी गुजर कहाँ ? कहाँ उसकी वह शान, कहाँ उसकी यह फ़ज़ीहत !

× × ×

किन्तु, क्या सचमुच मानव ने अंधकार पर विजय प्राप्त कर ली !

मरडौक—गैस के आविष्कर्त्ता—और एडिसन—बिजली-बत्ती के आविष्कर्त्ता—के वंशधर क्या सचमुच अन्धकार से मुक्ति पा गये !

यदि यही बात है, तो यूरोप का वह क्रान्तिकारी विचारक, मरते समय, उस दिन क्यों चिल्ला पड़ा था—

"Light, more light" प्रकाश—अधिक प्रकाश !

कितनी शताब्दियों—नहीं सहस्राब्दियों—पहले जो 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की चीख उठी थी, क्या वही आज इस 'प्रकाश, अधिक प्रकाश' के रूप में नहीं प्रकट हो रही है !

भाषायें दो थीं—भाव एक ! मानव दो—हृदय एक !

× × ×

प्रकाश और अन्धकार के संघर्ष—जंगोजहद—का इतिहास बहुत पुराना है, और स्पष्ट है, उसका अन्तिम अध्याय आज भी नहीं लिखा गया !

एक बात ज़रूर है कि प्रकाश का विजय-क्षेत्र दिन दिन विस्तार पा रहा है लेकिन, यह भी उतना ही सत्य है कि ज्यों ज्यों अन्धकार का क्षेत्र सीमित, परिमित होता जा रहा है, त्यों त्यों वह सघन, सघनतर होता जाता है—एक जगह सिमटकर वह घोन घोनतर होता जाता है!

जो सेना विस्तृत क्षेत्र में बिखरी-सी थी, वह परिमित क्षेत्र में आकर संगठित, सुसज्जित हो गई है।

अब जहाँ अन्धकार है, वहाँ वह पहले से भी ज्यादा भयानक, वीभत्स और मारक है! यही नहीं, प्रकाश के इन आविष्कारकों से उसकी शत्रुता बढ़ गई है। वह इमें अब ज़रा भी क्षमा नहीं कर सकता—बदला चुकाने को सदा उद्यत्!

और, वह कहाँ नहीं है! —वह तो चिराग की तलेटी में भी है।

हमारे पीछे तो वह छाया बनकर पड़ी है!!

और-तो और, हमने अभी तक कोई ऐसी गैस हंडिका या बिजली-बत्ती नहीं बनाई, जो हमारे हृदयों में भी प्रकाश पहुँचा दे।

मालूम होता है, बाहर का सभी अन्धकार सिमटकर हमारे अंतर-तम में डेरा डाले जा रहा है। कभी वहाँ एक टिम-टिम-सा दीख भी पड़ता था, लेकिन अब उसका अस्तित्व भी नहीं मालूम होता!

जब 'हिय को आँखें' मुँद गईं, तो ये चर्मचक्षु क्या करें, बेचारे!

हाँ, हम आज आँख रहते भी अन्धे हो चले हैं! अन्धकार में टटोल रहे हैं, भटक रहे हैं!

हम अपने ही अङ्ग की एक नस को काटकर खून चूसते हैं—खून

चूसते हैं, प्रसन्न होते हैं, आनन्द मनाते हैं ! हम अपनी ही तलवार अपनी छाती में घुसेड़ते हैं और कल्पना करते हैं, यह मारा ! क्या यह हमारी आँखों की ज्योति के सूचक हैं ? या, हमारे अन्धेपने के !

उफ्—कैसा भीषण दृश्य ! चारों ओर शोषण, उत्पीड़न, मार-काट, खून-खराबी, तड़पन, छटपटाहट, आह-ऊह, चीख-पुकार ! और इसके बीच में हमारी रंगरलियाँ, ये रासलीलायें, यह होलिकोत्सव, यह अट्टहास ! मानव ! मानव ! सचमुच तू आँख रहते अन्धा हो चला है !

अन्धकार में भटक रहा है !

मानव, अन्धकार-विजेता, आज, निस्सन्देह, तू अन्धकार से पूर्ण पराजित हो रहा है !

फिर क्यों न तू चिल्लाये—प्रकाश, अधिक प्रकाश !

फिर क्यों न तुझे वह अपनी पुकार याद आये—तमसो मा ज्योतिर्गमय !

× × ×

मशाल—ज्योति का प्रतीक !

इस प्रकाश के युग में, आज भी, हमें मशाल की जरूरत है !

हमारे हर रोम-कूप से ध्वनि-प्रतिध्वनि हो रही है—मशाल ! मशाल !

हमें वह मशाल चाहिए जो हमारे चिराग़ के नीचे के अन्धकार को दूर कर दे; हमारी काली-कलूटी छाया को हमारे निकट से सदा

के लिए खदेड़ दे; जो हमारे हृदय में—अन्तरतम में—अपनी निर्धूम, सतत ज्योतित टेम जला दे !

चिराग़ के नीचे का अन्धकार !—उफ़्, कभी आपने इस अन्धकार को देखने की कोशिश की है ? उसकी रोशनी में गुलछर्रे उड़ानेवाले, आपने कभी यह जानने की कोशिश की है कि जिसके सिर पर आपका यह चिराग़ जल रहा है, वह डंडा किस तरह काले अधजले तेल से चप चप और धूल-धक्कड़ से बदसूरत बन रहा है और उसके नीचे कितने शहीद परवानों के अम्बार लगे हैं !

आपकी छाया—काली-कलूटी छाया; आपकी हर हरकत के चलते-फिरते कारटून बनानेवाली, आपकी मुँह चिढ़ानेवाली यह छाया यह तो पल-पल इतनी बड़ी होती जा रही है कि शक है, आपके पूरे अस्तित्व को ही न कहीं ढाँप ले ! अरे, बहुत अंशों में तो ढाँप चुकी। ज़रा आईना देखिये, आपके पाउडर-पुते चेहरे के भीतर से इस छाया की छाँह झाँक रही है कि नहीं !

और, आपका हृदय, अन्तरतम !—हाँ यह 'अन्तर' जिसमें केवल 'तम ही तम' हो ! उसका तम-तोम अब अमा-निशीथ को भी मात देने चला है !

इसी लिए, तो कहता हूँ, आज हमें फिर मशाल की आवश्यकता आन पड़ी है !

हमें वह मशाल चाहिये जो हमारे चिराग़ के नीचे के अन्धकार को दूर कर दे, हमारी काली-कलूटी छाया को हमारे निकट से सदा के लिये खदेड़ दे, जो हमारे हृदय में—अन्तरतम में अपनी निर्धूम-सतत ज्योतित टेम जला दे !

निर्धूम—सतत ज्योतित !

खरपात, तेल-चर्बी, बल्ब या बैटरी की जिसे ज़रूरत न हो—ज़रूरत हो भी, तो उस एक कतरे की जो इस साढ़े तीन हाथ के ढाँचे को ढोये जा रहा है !

एक कतरे की !—गरमागरम हृदय-रक्त की ! वह एक कतरा जो आप-ही-आप बल उठे और दीप, देह और दिल सबको सरापा नूर कर दे—जगमग ! झलमल !! जहाँ देखो प्रकाश-ही-प्रकाश !

हाँ; हमें वह मशाल चाहिये—

या नहीं,

या नहीं, तो, जो हमारे इस झूठे प्रकाश-पुञ्ज में—गव-हंडिका में, बिजली बत्ती में और ये अपने नकली प्रकाश डालकर जिन्हें चकमक झकझक बनाती हैं उन संगमरमरी अट्टालिकाओं में, उनके झाड़-फनूसों में, मखमल और रेशम में, चाँदी और सोने में, स्नो और पाउडर में और उनसे धवलित चेहरों में अपनी टेम छुलाकर···

अपनी टेम छुलाकर—

धू धू धू धू—धू धू धू धू—हा हा हा हा—हू हू हू हू

बस, एक बार दुनिया पूर्ण प्रकाश देख ले, फिर शाश्वत अन्धकार ही सही !

इस अन्धकार और प्रकाश की आँखमिचौनी से वह कहीं सुन्दर होगा !

———

२
शहीदों की चिताओं पर

"मातृ-मन्दिर में हुई पुकार,
चढ़ा दो हमको हे भगवान्!"

हाँ, माता ने पुकार की।

माता ने—बन्दनी माता ने। जिसके पैरों में बेड़ियाँ थीं, हाथों में कड़ियाँ थीं। जिसकी आँखों में आँसू थे, जिसकी पुकार में गुहार थी।

बन्दनी माँ पुकार रही थीं, गुहार रही थीं। किन्तु किसे फ़ुर्सत थी सुनने की! सब अपने में भूले थे, सबको अपनी पड़ी थी।

बड़े-बड़े विद्वान्—दिग्गज विद्वान्! बड़े-बड़े बलवान्—कलियुगी भीम! माँ बन्दिनी थी, किन्तु बन्ध्या न थी। विद्वानों, बलवानों, कवियों, कलाकारों, वैज्ञानिकों, दार्शनिकों से अब भी गोद भरी थी उसकी।

किन्तु किसे फ़ुर्सत थी, उसकी पुकार सुनने की! गुहार सुनने की!

विद्वान् अनुसन्धान में लगे थे। बलवानों को आपसी ज़ोर आज़माई से ही फ़ुर्सत नहीं थी। कवि दिवा-स्वप्न देख रहे थे, कलाकार रंगमेज़ी में लगे थे। वैज्ञानिकों को प्रयोगशाला ने उलझा रखा था और दार्शनिकों का 'तत्त्वमसि' का मसला हल नहीं हो पाता था।

आँसुओं से माँ का आँचल भींगा जा रहा था; पुकार से उसका गला रुँधा जा रहा था!

"ओ मेरे बेटो, कहाँ हो, ओ मेरे बेटो ! किधर देख रहे हो ? क्या कर रहे हो ?

अरे, ये मेरी बेड़ियाँ, ये कड़ियाँ ? और यह मेरा बुढ़ापा ! तुम क्या कर रहे हो ? क्या सुन रहे हो ?

क्या मेरा उद्धार न करोगे ! क्या मैं यों ही तड़प-तड़पकर मर जाऊँ ? क्या इसी लिए दूध पिलाया था ?, क्या इन्हीं दिनों के लिए तुम्हें गोद खेलाया था ?

तुम बेटे हो मेरे ? तो फिर क्यों नहीं सुनते ?

किन्तु कौन सुने ? फुर्सत किसे थी ? विद्वानों का तत्त्वान्वेषण समाप्त नहीं हो रहा था, बलवान अखाड़े पर डंड पेल रहे थे, कवियों का दिवा-स्वप्न टूट नहीं रहा था, कलाकारों का कल्पना-लोक विस्तृत ही होता जाता था, वैज्ञानिकों को प्रयोगशाला छोड़ती नहीं थी और दार्शनिक इस जगतांजगत के झमेले में अपने को क्यों लगायें ?

और, माँ पुकार रही थी, गुहार रही थी, रो रही थी, चीख़ रही थी।

कि लोगों ने देखा—वह कोई बढ़ रहा है !

कोई बढ़ रहा है ! पागल-सी सूरत, भोलेपन की मूरत। आँखों में प्रमाद की-सी छाया। किन्तु पैरों में, चाल में एक अजीब दृढ़ता !

वह बढ़ा - बढ़ा; बढ़ते गया—बढ़ते गया !

× × ×

"सफलता पाई अथवा नहीं
उन्हें क्या ज्ञात दे चुके प्राण,

विश्व को चाहिये उच्च विचार !
नहीं, केवल अपना बलिदान !"

जब वह चला, किसी ने कहा—पागल ! किसी ने कहा—बददिमाग !

अरे गुस्ताख़ है, गुस्ताख़ ! जहाँ बिजली-बत्ती भी बुझ जाय, वहाँ यह चिराग़ जलाने की जुर्रत करने चला है !

रुको—आग में मत कूदो ! तुम आदमी हो पतंगा क्यों बनते हो !

किन्तु इन बातों पर उसने मुस्करा दिया ! वह बढ़ता गया !

"नाथ ! कहाँ चले मुझे छोड़कर नाथ !

भैया, भैया ! कहाँ जा रहे हो, हमें छोड़कर !

बेटा ! उफ़, कितनी तपस्या के बाद तुम्हें पाया। मेरी गोदी क्यों सूनी कर रहे हो, बेटा !

मित्र, ज़रा हमारी ओर भी तो ध्यान दो !"

अब हँसी की जगह उसके चेहरे पर करुणा थी ! किन्तु वह बढ़ता गया।

दम्भी शासन ने उसे ललचाया !

दम्भी शासन ने उसे धमकाया !

दम्भी शासन ने अपना खूनी पंजा बढ़ाया।

ललचाया, धमकाया, खूनी पंजा बढ़ाया ! खूनी पंजा-मृत्यु का खूनी पंजा !

दुनिया चीख उठी—आह, आह ! प्रकृति चीख उठी—आह, आह !

हवा काँपी, ज़मीन काँपी, हृदय काँपे !

किन्तु, वह बढ़ता गया—दृढ़ चरण, सम गति, हृदय में उल्लास, चेहरे पर आनन्द की लहरियाँ।

"नाथ !..................

भैया !..................

बेटा !..................

मित्र ! ...."

कान में यह क्या साँय-साँय की आवाज़ ? क्षण भर के लिए वह चौंका, वह रुका ! कान में यह क्या साँय-साँय की आवाज़ ?

किन्तु, इसी समय फिर उसके कानों में भनक आई—"ओ मेरे बेटो ! अरे, ये मेरी बेड़ियाँ..............."

"आया माँ, आया !" वह चिल्लाया, वह बढ़ा ! सामने सनसनाती गोलियाँ; उसने सीना खोल दिया ! सामने फाँसी का तख़्ता; वह उछलकर चढ़ गया !

खून की कुछ बूँदें ज़मीन पर गिरीं।

एक कीमती जान घुटकर चल बसी !

नीचे दुनिया रो रही थी, ऊपर वह तराने लगाते जा रहा था ! नीचे स्वजनों और परिजनों की हिचकियाँ ! ऊपर किन्नरियों के नृत्य, परियों के पँखों की फटफटाहट।

बुढ़िया माँ ने देखा, उसकी जंजीर की एक कड़ी कट चुकी है।"

× × ×

"ऐ शहीद ! उठने दे
अपना फूलों भरा जनाज़ा !"

शहीद का जनाज़ा—वह फूलों से भरा उठना ही चाहिये !

जिसने अपने को देश पर, आदर्श पर कुर्बान कर दिया, उसके प्रति अपना अन्तिम सम्मान भी तो हम प्रकट कर लें।

किन्तु, क्या ऐसा हो पाता है ?

कितने ऐसे शहीद हुए, जिन्हें यह अन्तिम सम्मान भी प्राप्त हो सका ?

जिन्होंने उन्हें शहीद बनाया, उन्होंने यह भी कोशिश की कि उनकी लाश तक किसी को नसीब न होने पाये।

उनकी जान लेकर भी उन्हें सब्र न हुआ, उनकी लाश की दुर्गत कराने से भी वे बाज़ नहीं आये।

फिर, शहीद न्यौता देकर तो मरने जाते नहीं—प्रायः उन्होंने ऐसी जगहों पर प्राणार्पण किया, जहाँ उनका अपना कोई नहीं था।

सन् सत्तावन के शहीदों के कारुणिक निधन पर बाग़ी बादशाह 'जफ़र' ने आँसू बहाये थे —

न दबाया ज़ेरे चमन उन्हें,
न दिया किसी ने कफ़न उन्हें,

किया किसने यार दफ़न उन्हें,
बे ठिकाना उनका मज़ार है !

सत्तावन के शहीदों की यह परम्परा हमारे देश में हमेशा क़ायम रही !

कूका-विद्रोह के शहीदों का कहीं मज़ार है ?

१९०५ से १९१५ तक के बम-पिस्तौल-युग में जिन शहीदों ने कनाडा से अमृतसर और बंगाल से कुस्तुनतुनिया तक अलौकिक कारनामे दिखाये, क्या उनका नामोनिशान भी हम कहीं पा रहे हैं, आज !

१९२१ से १९४२ तक के गांधी-युग के अनेक शहीदों का भाग्य भी कुछ दूसरा नहीं रहा !

सरदार भगतसिंह को किस चमन में दफ़नाया गया ? सरदार नित्यानन्द को क्या कफ़न भी दिया जा सका ?

आजाद हिंद-फौज के जिन सैनिकों ने अपने ख़ून से शौनान से मणिपुर तक की भूमि को सींचा, उनकी चिताएं कहाँ जलाई गईं ? बयालीस के बाद जिन बागियों ने देश के कोने-कोने में शहादत की धूनी रमाई, उनका ठौर ठिकाना भी क्या आज मिल सकता है ?

जब हम युद्ध में होते हैं, हमें पीछे देखने की फ़ुरसत कहाँ रहती है ?

जब हम युद्ध से बाहर होते हैं, आगे की तैयारियाँ या निर्माण की समस्यायें ही हमें इस तरह आ दबोचती हैं कि चाहकर भी हम पीछे देख नहीं पाते ।

ज़िन्दों के मसले हम पर इस तरह हावी हो जाते हैं, कि मुर्दों की ओर कौन ध्यान दे ?

भिन्नता नष्ट हो जाती है, वे सब एक दीप नाम से अभिहित होते हैं।

तुम किसी शहीद का नाम भुला दो, उसकी बलि-भूमि की भी याद तुम्हें न रहे—किन्तु शहादत को तुम भूल नहीं सकते, शहीद भुलाये नहीं जा सकते!

जब-जब शहीदों की चर्चा होगी, हमारी आँखें गीली हो उठेंगी।

जब-जब शहीदों की चर्चा होगी, हमारे हृदय उच्छ्वसित हो उठेंगे!

जब-जब शहीदों की चर्चा होगी, हमारे सिर आप ही आप झुक जायेंगे!

रक्त के बने हम प्राणी, रक्त-दान को हम नहीं भूल सकते!

धन्य हैं, वे जो रक्त-दान देकर अमर हो गये!

उनका स्थान सदा वहीं होगा जहाँ अमरों का अधिवास है।

जहाँ जरा नहीं है, जड़ता नहीं है, ज्वर नहीं है, जाड़ा नहीं है।

जहाँ सदा बसंत है, अक्षय स्वास्थ्य है, निर्धूम चेतना है, शाश्वत यौवन है।

जहाँ क्षुद्रता न है, विस्मृति न है।

हमारे शहीद वहाँ पहुँच चुके हैं, जहाँ से वे हमारी स्मृति-लघुता पर मुस्करा रहे होंगे; हमें अनेक क्षुद्र स्वार्थों में उलझे देख सिहर-सिहर उठते होंगे!

वे पृथ्वी पर आये थे, किन्तु अमरों के वंश से थे।

इसलिए पृथ्वी के पाप-ताप उन्हें न दबोच सके, और पहला मौका पाते ही हमें मरने-जलने को छोड़ कर वे चलते बने!

शहीदों की चिताओं पर

उनकी स्मृति ही उनकी चिता है। वह चिता मानव-मन में हमेशा धू धू करके जलती रहेगी और उनके आस-पास सदा मेले जुड़ते रहेंगे।

मेले—जहाँ पत्नी के आँसू होंगे!

मेले—जहाँ माता की उसाँसें होंगी!

मेले—जहाँ बहनों के सूखे चेहरे होंगे!

मेले—जहाँ मित्रों के मुरझाये मन होंगे!

मेले—जहाँ हर आदमी के हाथों में श्रद्धांजलि की मालायें होंगी

हाथ में माला; आँखों में आँसू—

"वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशाँ होगा।"

२

आँधी में चलो

आप खिली चाँदनी में चलना चाहते हैं, मैं चिलचिलाती धूप में; आपको संध्या की सुनहली साड़ी पसन्द आती है, मुझे निशीथ का कज्जल अंचल; आपके भावुक हृदय को ऊषा का मुस्कान जंचता है, मेरा ऊसर मन दुपहरिया की धू-धू खोजता है; योंही, आप शीतल मन्द सुगन्ध समीर में मन्द-मन्द विचरण करना चाहते हैं और मैं आंधी के बीच इठलाते चलना चाहता हूँ।

कितने नीरस हो तुम—कहेंगे आप। कितने खूसट हैं आप—कहूँगा मैं।

न मालूम किसने और क्यों सौन्दर्य के साथ कोमलता का गठबन्धन कर दिया। सौन्दर्य का नाम लेते ही हमारी आँखों के सामने किसी कामिनी का गुलाबी चेहरा, किसी पुष्प की मृदुल कलिका, किसी उपवन की झलमल रंगीनियाँ या किसी जलाशय की चंचल लहरों पर चाँदनी का नृत्य नाचने लगता है। मेरे जानते ये मानव-जाति की शिशुता की कल्पनायें हैं। बच्चे-रंगीन चीजों को ज्यादा पसन्द करते हैं!

शिशुता की कल्पना होने पर भी इसमें पुरातनता की रुढ़ी गन्ध है। इसीसे मैं कहता हूँ, आप खूसट हैं।

जरा नये ढङ्ग से सोचिये—नवीन रुचि, नवीन-प्रवृत्ति, नवीन इच्छा, नवीन आकांक्षा; नई चाह, नई राह-जवानी, यही तो शृङ्गार है। यदि यह नहीं; तो जवानी कहाँ, यौवन के साथ!

यदि आप गौर करेंगे तो पायेंगे कि आपकी धारणायें आपकी अपनी नहीं हैं,या तो आपने उधार लिया है या चुपके से,चोर की देसी, आपके दिमाग में घुस कर उन्होंने घर कर लिया है। ऐसा घर कि घरवाले के घर में जगह नहीं। चोर बोलता है, और हम समझते हैं हम बोल रहे हैं। आह ! मनुष्य अपने को कितना गुलाम बनाये हुए है। हमारी आँखें अपनी होती हैं, किन्तु देखते हैं दूसरे की नजर से, हमारे काम अपने होते हैं, किन्तु श्रवण-शक्ति दूसरे की, हमारा मस्तिष्क अपना होता है, किन्तु चिन्तन-प्रणाली अन्य की। यदि आप स्वतंत्र होना चाहते हैं तो अपनी ज्ञानेन्द्रियों को गुलामी से छुड़ाइये अपनी आँख से देखिये, अपने कान से सुनिये; अपनी नाक से सूँघिये, अपनी जीभ से चखिये। सोचिये अपने ढङ्ग से, बोलिये अपनी बात।

आप चाँदनी का सौन्दर्य; पुरानी नज़रों से; ज़रा नई नज़र से चिलचिलाती धूप के सौन्दर्य को देखिये। मन्द समीरण 'का मज़ा, पुरानी रुचि के अनुसार बहुत लूट चुके, अब ज़रा आँधी की बहार भी लूटिये।

सौन्दर्य का क्षेत्र सीमित नहीं है। जहाँ कहीं भव्यता है, प्रज्वलता, महत्ता और अलौकिकता है- वहीं सौन्दर्य है। हाँ देखनेवाली आँख चाहिये।

पुष्पवाटिका में विचरण.करनेवाली "कंकण किंकिणी नूपुर-धुनि" वाली कुमारी जानकी में सौन्दर्य है, तो अशोक वाटिका में बैठी, रुच केश शुष्क बदन, तपस्या-रत अर्द्धांङ्गिनी सीता में भी कम सौन्दर्य नहीं है। जनकपुर में दुलहे के रूप में बैठे 'कोटि मनोज लजावन हारे' राम में सौन्दर्य है, तो समुद्र से राह माँगकर भी न पानेवाले क्रुद्ध मूर्ति, कुटिल भृकुटि, बाण चढ़ा कर धनुष की प्रत्यंचा खींचते हुए

रुद्र-रूप राम में भी अपार सौन्दर्य है। आप गोकुल की रास-लीला में लीन कन्हैया में सौन्दर्य पाते हैं, किन्तु भीष्म के वाण से व्याकुल कुरुक्षेत्र के चक्रधर में नहीं, तो मैं कहूँगा आपका दुर्भाग्य है। हरिणी की निरीह आँखें सौन्दर्यमयी हैं, और क्रुद्ध सिंह की जलती आँखें भी। चांदनी में मजा है। तो धूप में भी! सन्ध्या को आप बहुत टहलते होंगे, एक दिन आधी रात को टहलिये—चारों ओर घोर अन्धकार, निस्तब्धता का साम्राज्य, कोई राही नहीं, कहीं राह नहीं और आप दनादन अकेले आगे बढ़ते जा रहे हैं, ? आह! कितना मजा!!

और आँधी के बीच ? मत पूछिये। दिन रात "इन्कलाब जिन्दाबाद" चिल्लाते हुए भी आपने यदि आँधी का मर्म नहीं जाना, तो मैं कहूँगा आप अभी ऊपर की सतह पर हैं, चीजों के मर्म में घुस कर देखने की सतत जाग्रत प्रवृत्ति आप में है नहीं।

हड़ हड़ हड़, हा हा हा—वृक्ष उखड़ रहे हैं, पत्ते उड़ रहे हैं, धूल और तिनके का नाम निशान मिटना चाहता है। हड़ हड़ हड़, हा हा हा—खिड़कियाँ टूट रही हैं, छतें हिल रही हैं, छप्पड़ उखड़ रहे हैं। हड़ हड़ हड़, हा हा हा—मनुष्य व्याकुल हो राम गुहार—कर रहे हैं; पशु व्याकुल हो इधर-उधर मारे-मारे भाग रहे हैं, और बेचारे पंछी—कितने के डैने टूट गये, कितने के चंगुल में मरोड़ पड़ गया—पतली डालियों को चंगुल से जकड़ कर वे बचना चाहते थे। कड़ कड़ कड़—वह डाली टूटी, ह ह ह वह छप्पड़ उड़ा; हा हा हा-वह क्रन्दन सुनिये—कोई दुर्घटना हुई क्या ?

और, ऐसी आँधी में चलना। आँखों में धूल देखने की किसकी हिम्मत। कानों में एक ही स्वर और कुछ सुन नहीं सकते। कभी एक झोंका पूरब की ओर घसीट ले जाता है, कभी दूसरा दक्षिण की

ओर। तो भी चलते रहना—अपने निश्चित लक्ष्य की ओर। कैसे? एक दिन चल कर देखिये—बताने से ऐसी चीजें समझ नहीं आती।

आंधी, तूफान, ज्वार, बाढ़, इन्कलाब, विप्लव, क्रान्ति, रेभोलूयन्-सब प्रकृति की एक ही उद्दाम—लीला के भिन्न-भिन्न नाम हैं। हाँ।

किसी ने कहा है Think dangerously—खौफनाक ढङ्ग से सोचो। दूसरे ने कहा है—Live dangerously—खतरे में रहो। मैं कहता हूँ—दोनों को अपनाओ- एक दूसरे का पूरक है।

कोमलता बचपन है, कठोरता जवानी। बुढ़ापे की बात, बूढ़े जाने।

युवको! कठोर बनो—साहसी बनो, दुस्साहसी बनो। आँधी में चलो, तूफान से दोस्ती जोड़ो। हाँ, तूफान से।

४

कस्मै देवाय हविषा विधेम

कस्मै देवाय हविषा विधेम !

किस देवता के श्री चरणों में मैं अपनी अँजलि अर्पित करूँ—कौन है वह देवता जो मेरी इस-श्रद्धांजलि के पाने का उपयुक्त पात्र है ?

वह—वह जो अभी आने को है, किन्तु जिसकी झलक अभी से उस पर्वत की चूड़ा पर दीख पड़ती है। क्या वह उपयुक्त पात्र है, मेरे इस दिव्य उपहार के पाने का ?

वह प्रकाशमान है, ज्योति-दाता है। है—मैं मानता हूँ। किन्तु साथ ही वह वही तो है जिसकी पहली किरण पर्वत की सबसे ऊँची चोटी पर पड़ती है, दुपहरिया में सबसे ऊंचे स्थान में रह कर जो दीनों पर अग्निवाण बरसाता है और अंत में भी जिसकी उच्च-प्रियता कम नहीं होती, अपनी अंतिम उसाँसों से—अपने कलेजे के खूनसे-आकाश-चारी बादलों को रक्त-रंजित कर जाता है।

नहीं—कदापि नहीं।

वह, जो इतने विशाल रूप में हमारे सामने खड़ा है ?

उसका उज्ज्वल धवल ललाट कितना आकर्षक, कितना मोहक है-प्रातः संध्या को वह और भी कितना सुन्दर रूप धारण कर लेता है। उसके वक्षस्थल का पीतल रंग, उसके कटि देश का धूसर रंग और उसके पद-प्रदेश का नेत्ररंजक कलित हरित, रंग—कैसा सुहावना है

वह। किन्तु इतने झरनों नालियों और नदियों का जन्म-दाता होकर भी तो वह पत्थर-हृदय है।

नहीं, कदापि नहीं।

किसकी मधुर स्मृति में यों गुनगुनाती जाती हो—सहचरी सरिते! कितनी ही ऊषा, सन्ध्या और निशीथ तेरे इस अश्रान्त गान का अर्थ लगाने में मैंने व्यतीत कर दी, कितनी ज्वालाओं को तेरी तरंगों—तेरे हृदय के फफोलों के साथ खेलने को छोड़ दिया; कितनी ही कामनाओं को तेरी अन्तर्धारामें लीन कर दिया। हे जगत के पार-वार तिरोहित करनेवाली तरंगिनी! इच्छा होती है यह अर्घ्य भी तुम्हारे ही चरणों में चढ़ा दूँ। किन्तु तुम नागराज-कन्या जो हो। यह विद्रोही, राज-सत्ता को कैसे स्वीकृत करे!

नहीं, कदापि नहीं!

वनस्पति!—ऊँचे-ऊँचे, आकाश-हृदय विदारी, पादप पुंज; घनसे लिपटी, लोनी-लोनी, पुष्पों से लदी, लतिकायें; गले-से-गले हिले-मिले रंग-बिरंगे पौधे; जगत को जीवन देनेवाली संसार-पालक सरूप श्यामल शस्य राजि; और, पृथ्वी की सरसता को अनेक पद-प्रहारों को सह कर भी अक्षुण्ण रखनेवाली प्यारी-न्यारी दूब—मन उमगता है, हृदय उछलता है तुम्हारे ही ऊपर अपनी इस अंजलि का अर्पण करने का। किन्तु विनाश की गोद में खेलनेवाला यह विद्रोही केवल शिवं-सुन्दरम् की उपासना कैसे करे!

नहीं—कभी नहीं!

तो फिर वह कौन है, वह अमंगल मूर्ति, सुन्दरता-सदन; प्रलय-पटु, सृष्टि-कुशल;—जिसके पावन पदों में यह अर्घ्य अर्पित हो—

५

नींव की ईंट

यह जो चमकीली, सुन्दर, सुघड़ इमारत है; यह किस पर टिकी है!

इसके कंगूरों को आप देखा करते हैं, क्या कभी आपने इसकी नींव की ओर ध्यान दिया है?

दुनिया चकमक देखती है, ऊपर का आवरण देखती है; आवरण के नीचे जो ठोस सत्य है, उस पर कितने लोगों का ध्यान जाता है।

क्योंकि ठोस 'सत्य' सदा 'शिवम्' होता ही है; किन्तु वह हमेशा 'सुन्दरम्' भी हो, यह आवश्यक नहीं।

सत्य कठोर होता है; कठोरता और भद्दापन साथ-साथ जाया करते हैं।

हम कठोरता से भागते हैं, भद्देपन से भागते हैं—इसी लिए सत्य से भी भागते हैं।

नहीं तो हम इमारत के गीत नींव के गीत से प्रारम्भ करते।

वह ईंट धन्य है, जो कट-छंट कर कंगूरे पर चढ़ती और बरबस लोक लोचनों को अपनी ओर आकृष्ट करती है।

किन्तु उससे भी धन्य है वह ईंट जो ज़मीन के सात हाथ नीचे गड़ गई और इमारत की पहली ईंट बनी!

क्योंकि इसी पहली ईंट पर उसकी मज़बूती और पुख्तेपन पर—सारी इमारत आस्ति-नास्ति निर्भर करती है।

उस ईंट को हिला दीजिये, कंगूरा बेतहाशा ज़मीन पर आ रहेगा।

× × × ×

कंगूरे के गीत गाने वाले हम; आइये, अब हम नींव के ईंट के गीत गायें!

वह इट जो ज़मीन में इसलिए गड़ गई, कि दुनिया को इमारत मिले, कंगूरा मिले!

वह ईंट जो सब ईंटों से ज्यादा पक्की थी; जो ऊपर लगी होती, तो कंगूरे की शोभा सौगुनी कर देती।

किन्तु जिसने देखा, इमारत की पायदारी उसकी नींव पर मुनहसिर होती है इसलिए जिसने अपने को नींव में अर्पित किया।

वह ईंट जिसने अपने को सात हाथ जमीन के अन्दर इसलिए गाड़ दिया कि इमारत ज़मीन के सौ हाथ ऊपर तक जा सके।

वह ईंट जिसने अपने लिए अन्धकूप इसलिए कबूल किया कि ऊपर के उसके साथियों को स्वच्छ हवा मिलती रहे, सुनहली रोशनी मिलती रहे।

वह ईंट जिसने अपना अस्तित्व इसलिए विलीन कर दिया कि संसार एक सुन्दर सृष्टि देखे।

× × ×

सुन्दर सृष्टि ! सुन्दर सृष्टि हमेशा ही बलिदान खोजती है—बलिदान ईंट का हो या व्यक्ति का !

सुन्दर इमारत बने, इसलिए कुछ पक्की-पक्की लाल ईंटों को चुपचाप नींव में जाना है।

सुन्दर समाज बने, इसलिए कुछ तपे-तपाये लोगों को मौन-मूक शहादत का लाल सेहरा पहनना है।

शहादत और मौन-मूक ! जिस शहादत को शुहरत मिली, जिस बलिदान को प्रसिद्धि प्राप्त हुई वह इमारत का कंगूरा है—मंदिर का कलश है।

हाँ, शहादत और मौन-मूक। समाज की आधार-शिला यही होती है।

ईसा की शहादत ने ईसाई-धर्म को अमर बना दिया, आप कह लीजिये ! किन्तु, मेरी समझ से, ईसाई-धर्म को अमर बनाया उन लोगों ने जो उस धर्म के प्रचार में अपने को अनाम उत्सर्ग कर दिया !

उनमें से कितने ज़िन्दा जलाये गये, कितने शूली पर चढ़ाये गये; कितने रनवन की खाक छानते जंगली जानवरों के शिकार हुए, कितने उससे भी भयानक जन्तु के भूख-प्यास के शिकार हुए।

उनके नाम शायद ही कहीं लिखे गये हों—उनकी चर्चा शायद ही कहीं होती है।

किन्तु, ईसाई-धर्म उन्हीं के पुण्यप्रताप से फल-फूल रहा है।

वे नींव की ईंट थे, गिरजाघर के कलश उन्हीं की शहादत से चमकते हैं !

आज हमारा देश आज़ाद हुआ सिर्फ उनके बलिदानों के कारण नहीं, जिन्होंने इतिहास में स्थान पा लिया है !

देश का शायद ही ऐसा कोना हो, जहाँ कुछ ऐसे दधीचि न पाये गये हों, जिनके हड्डियों के दान ने ही विदेशी वृत्रासुर का नाश किया !

हम जिसे देख नहीं सकें वह सत्य नहीं है—यह है मूढ़ धारणा ! ढूँढ़ने से ही सत्य मिलता है ! हमारा काम है, धर्म है, ऐसी नींव की ईंटों की ओर ध्यान देना !

× × ×

सदियों के बाद नये समाज की सृष्टि की ओर हमने पहला कदम बढ़ाया है !

इस नये समाज के निर्माण के लिए भी हमें नींव की ईंट चाहिये।

अफसोस, कंगूरा बनाने के लिए चारों ओर होड़ाहोड़ी मची है, नींव की ईंट बनने की कामना लुप्त हो रही है !

सात लाख गाँवों का नवनिर्माण ! हजारों शहरों और कारखानों का नवनिर्माण !—कोई भी शासन इसे संभव कर नहीं सकता ! जरूरत है ऐसे नौजवानों की, जो इस काम में अपने को चुप-चाप खपा दें !

जो एक नई प्रेरणा से अनुप्राणित हों, एक नई चेतना से अभिभूत हों। जो दलों से दूर हों, दलबन्दियों से दूर हों। जो वन्दों से दूर हों, विवन्दों से दूर हों। जो चुनावों से दूर हों, चहल-पहल से दूर हों। जो प्रसिद्धि से परे हों, शुहरत से अलग हों।

साधना की जिन्होंने धूनी रमाई हो, शहादत की जिन्होंने शपथ खाई हो।

जिनमें कंगूरा बनने की कामना न हो; कलश कहलाने की जिनमें वासना न हो। सभी कामनाओं से दूर—सभी वासनाओं से दूर।

"मिटाने के लेहैड़े नहीं"—ऐसे लोगों को आप लाठी से हाँक कर एक जगह नहीं खड़ा कर सकते। बलिभावना की पहरथ डोर ही इन्हें बरबस बाँधे रहेगी!

हमारा उदय के लिए आतुर नया समाज चिल्ला रहा है—हमारी नींव की ईंट किधर है?

देश के यौवनों को यह चुनौती है!

६

इन्कलाब जिन्दाबाद

(भगतसिंह की शहादत पर)

अभी उस दिन की बात है। हिन्दुस्तान की नामधारी पार्लियामेन्ट लेजिस्लेटिव-एसेम्बली— में बम का धड़ाका हुआ। उसका धुआँ विद्युत-तरंग की तरह, भारत के कोने-कोने में फैल गया। बड़े-बड़े कलेजेवालों के होश गायब हुए, आँखें बंद हुईं—मूर्च्छा की हालत में कितने ही के मुँह से कितनी ही अंट-संट बातें भी निकलीं।

उस धुएँ में एक पुकार थी, जो धुआँ के विलीन हो जाने पर भी, लोगों के कान को गूँजित करती रही। वह पुकार थी—"इन्कलाब जिन्दाबाद।"

"लौंग लिभ रेभोल्यूशन"-"इन्कलाब जिन्दाबाद"-"विप्लव अमर हो।" इस पुकार में न जाने क्या खूबी थी कि एसेम्बली ही से निकल कर भारत की झोपड़ी-झोपड़ी को इसने अपना घर बना लिया। देहात के किसी तंग रास्ते में जाइये, खेलते हुए कुछ बच्चे आपको मिलेंगे। अपने धूल के महल को मिट्टी में मिला कर उनमें से एक उछलता हुआ पुकार उठेगा—"इन्कलाब" एक स्वर में उसके साथी जवाब देंगे "जिन्दाबाद!" फिर छलाँग भरते वे नौ दो ग्यारह हो जायँगे!

सरकार की नज़र में यह पुकार राजद्रोह की प्रतिमा थी, हममें से कुछ विचार में इसमें हिंसा की बू थी। इसके दवाने की चेष्टायें हुईं। किन्तु ऐसे सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए। लाहौर कांग्रेस के सभापति पं० जवाहर लाल नेहरू ने अपने भाषण को इसी पुकार में समाप्त

कर इस पर वैधता की मुहर लगा दी। अब तो यह हमारी राष्ट्रीय पुकार हो गई है।

हम नौजवान इस पुकार पर क्यों आशिक हैं? क्रान्ति को हम चिरजीवी क्यों देखना चाहते हैं? क्या इसमें हमारी विनाश-प्रियता की गन्ध नहीं है?

युवक समझते हैं कि हमारी सरकार, हमारा समाज, हमारा परिवार आज जिस रूप में है, यह बरदाश्त करने लायक, निभाने लायक, किसी तरह काम चलाने लायक भी, नहीं है। उसमें व्यक्तित्व पनप नहीं सकता, बन्धुत्व और समत्व के लिये उसमें स्थान नहीं, मनुष्य के जन्मसिद्ध अधिकार स्वातन्त्र्य तक की वह दुश्मन है। आज मनुष्यता इस मशीन में पिस रही है—छटपटा रही है, कराह रही है। कुछ तोड़-जोड़, कुछ काट-छाँट, कुछ इधर-उधर से अब काम चलनेवाला नहीं। यह घर कभी अच्छा रहा हो, किन्तु अब जान का खतरा हो चला है; अतः हम इसे ढाह देना चाहते हैं, जमींदोज कर देना चाहते हैं। क्योंकि इस जगह पर हम अपने लिये एक नया सुन्दर हवादार मकान बनाना चाहते हैं। हम विप्लव चाहते हैं—क्या करें, सलाह-सुधार से हमारा काम चल नहीं सकता।

और, हम चाहते हैं कि विप्लव अमर हो, क्रान्ति चिरजीवी हो। क्यों? क्योंकि मनुष्य में जो राक्षस है, उसकी हमें खबर है। और खबर है इस बात की, कि यह राक्षस, राक्षस की तरह, बढ़ता और मनुष्य को आत्मसात कर लेता—उसे राक्षस बना छोड़ता है। इस लिए कि यह राक्षस शक्ति संचय न करने पावे, मनुष्यता को कुचलने न पावे, हम क्रान्ति का कुठार लिए उसके समस्त सद्‌-

इन्कलाब जिन्दाबाद

पुकार के कारण भी वह इतिहास के लिए अजर-अमर हो गया।

सभी ऋषि मंत्र-निर्माण के अधिकारी नहीं उनमें भी गायत्री का प्रवर्त्तक तो ब्रह्मा ही हो सकते हैं। इन्कलाब-ज़िन्दाबाद साधारण मंत्र ही नहीं रहा वह राष्ट्र का गायत्री-मंत्र हो चुका है। इसके ब्रह्मा ने कमण्डलु की जल से नहीं; अपने खून के छींटे से इसे पूत किया है आज भारत का जर्रा जर्रा पुकार रहा है।

"इन्कलाब ज़िन्दाबाद।"

* इस लेख पर लेखक को गोरी सरकार से दो साल की सख्त कैद की सजा मिली थी।

यद्परिकर रहना चाहते हैं। क्रान्ति अमर हो, जिसमें मानवता पर राक्षसता का राज्य न हो; क्रान्ति अमर हो, जिसमें कँटीले ठूँठ विश्व-वाटिका के कुसुम कुञ्जों को कंटक-कानन न बना डालें; क्रान्ति अमर हो, जिसमें संसार-समता का जल निर्मल रहे, कोई सेंवार उसे गँदला और विषैला न कर दे। प्रपंच, पाखंड, धोखा, दगा के स्थान में सदयता सहृदयता, पवित्रता और प्रेम का बोल-बाला रहे— इसलिए विप्लव अमर हो, क्रान्ति चिरजीवी हो।

विनाश के हम प्रेमी नहीं हैं किन्तु विनाश की कल्पना मात्र ही हममें कंप-कंपी नहीं लाती; क्योंकि हम जानते हैं कि बिना विनाश के निर्माण का काम चल नहीं सकता।

इन्कलाब जिन्दाबाद का प्रवर्तक आज हममें नहीं रहा। विप्लव के पुजारी की अन्तिम शय्या सदा से फाँसी की टिकटी रही है। भगत सिंह अपने वीर साथियों--सुखदेव और राजगुरू के साथ हँसते-हँसते फाँसी पर झूल गया। झूल गया--हँसते-हँसते, गाते-गाते—'मेरा रंग दे बसन्ती चोला'। सुना है,उसने मैज़िस्ट्रेट से कहा—"तुम धन्य हो मैज़िस्ट्रेट कि यह देख सके कि विप्लव के पुजारी किस तरह हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करते हैं"। सचमुच मैज़िस्ट्रेट धन्य था, क्योंकि न केवल हमें, किन्तु उनके माँ बाप सगे सम्बन्धी को भी उनकी लाश तक देखने को न मिली। हाँ ,सुनते हैं, किरासिन के तेल में अधजले माँस के कुछ पिंड, हड्डियों के कुछ टुकड़े और इधर-उधर बिखरे खून के कुछ छींटे मिले हैं। ज़हे किस्मत।

भगतसिंह न रहा। गाँधी का आत्मबल, देश की सम्मिलित भिक्षा-वृत्ति नौजवानों की विफल चेष्टायें कुछ भी उसे नहीं बचा सका। खैर भगतसिंह न रहा उसकी कार्य-पद्धति आज देश को पसन्द नहीं, किन्तु उसकी पुकार तो देश की पुकार हो गई है। और, केवल इस

इन्कलाब जिन्दाबाद

पुकार के कारण भी वह इतिहास के लिए अजर-अमर हो गया। सभी ऋषि मंत्र-निर्माण के अधिकारी नहीं उनमें भी गायत्री का प्रवर्त्तक तो ब्रह्मा ही हो सकते हैं। इन्कलाब-ज़िन्दाबाद साधारण मंत्र ही नहीं रहा वह राष्ट्र का गायत्री-मंत्र हो चुका है। इसके ब्रह्मा ने कमण्डलु की जल से नहीं; अपने खून के छींटे से इसे पूत किया है आज भारत का ज़र्रा ज़र्रा पुकार रहा है।

"इन्कलाब ज़िन्दाबाद।"

● इस लेख पर लेखक को गोरी सरकार से दो साल की सख्त कैद की सजा मिली थी!

बद्धपरिकर रहना चाहते हैं। क्रान्ति अमर हो, जिसमें मानवता पर राक्षसता का राज्य न हो; क्रान्ति अमर हो, जिसमें कँटीले ठूँठ विश्व-वाटिका के कुसुम-कुञ्जों को कंटक-कानन न बना डालें; क्रान्ति अमर हो, जिसमें संसार-समता का जल निर्मल रहे, कोई सेंवार उसे गँदला और विषैला न कर दे। प्रपंच, पाखंड, धोखा, दगा के स्थान में सदयता सहृदयता, पवित्रता और प्रेम का बोल-बाला रहे— इसलिए विप्लव अमर हो, क्रान्ति चिरजीवी हो।

विनाश के हम प्रेमी नहीं हैं किन्तु विनाश की कल्पना-मात्र ही हममें कंप-कंपी नहीं लाती; क्योंकि हम जानते हैं कि बिना विनाश के निर्माण का काम चल नहीं सकता।

इन्कलाब जिन्दाबाद का प्रवर्तक आज हममें नहीं रहा। विप्लव के पुजारी की अन्तिम शय्या सदा से फाँसी की टिकटी रही है। भगत सिंह अपने वीर साथियों--सुखदेव और राजगुरू के साथ हँसते-हँसते फाँसी पर झूल गया। झूल गया--हँसते-हँसते, गाते-गाते—'मेरा रंग दे बसन्ती चोला'। सुना है,उसने मैजिस्ट्रेट से कहा—"तुम धन्य हो मैजिस्ट्रेट कि यह देख सके कि विप्लव के पुजारी किस तरह हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करते हैं"। सचमुच मैजिस्टेट धन्य था, क्योंकि न केवल हमें, किन्तु उनके माँ बाप सगे सम्बन्धी को भी उनकी लाश तक देखने को न मिली। हाँ ,सुनते हैं, किरासिन के तेल में अधजले माँस के कुछ पिंड, हड्डियों के कुछ टुकड़े और इधर-उधर बिखरे खून के कुछ छींटे मिले हैं। ज़हे किस्मत।

भगतसिंह न रहा। गाँधी का आत्मबल, देश की सम्मिलित भिक्षा-वृत्ति नौजवानों की विफल चेष्टायें कुछ भी उसे नहीं बचा सका। खैर भगतसिंह न रहा उसकी कार्य-पद्धति आज देश को पसन्द नहीं, किन्तु उसकी पुकार तो देश की पुकार हो गई है। और, केवल इस

पुकार के कारण भी वह इतिहास के लिए अजर-अमर हो गया।

सभी ऋषि मंत्र-निर्माण के अधिकारी नहीं उनमें भी गायत्री का प्रवर्त्तक तो ब्रह्मा ही हो सकते हैं। इन्कलाब-ज़िन्दाबाद साधारण मंत्र ही नहीं रहा वह राष्ट्र का गायत्री-मंत्र हो चुका है। इसके ब्रह्मा ने कमण्डलु की जल से नहीं; अपने खून के छींटे से इसे पूत किया है आज भारत का ज़र्रा ज़र्रा पुकार रहा है।

"इन्कलाब ज़िन्दाबाद।"

• इस लेख पर लेखक को गोरी सरकार से दो साल की सख्त कैद की सजा मिली थी!

७
नई संस्कृति की ओर

हिन्दोस्तान आजाद हो गया। आजाद हिन्दोस्तान का ध्यान एक नये समाज के निर्माण की ओर केन्द्रित हो रहा है।

यह नया समाज कैसा हो—उसका मूल आधार कैसा हो, उसका विकास किस प्रकार किया जाय—हिन्दुस्तान का हर देश-भक्त इन प्रश्नों पर सोच-विचार कर रहा है।

समाज को अगर एक वृक्ष मान लिया जाय, तो अर्थनीति उसकी जड़ है; राजनीति आधार; विज्ञान आदि उसके तने हैं और संस्कृति उसके फूल!

इसलिए नए समाज की अर्थनीति या राजनीति आदि पर ही हमें ध्यान देना नहीं है बल्कि उसकी संस्कृति की ओर सबसे अधिक ध्यान देना है; क्योंकि मूल और तने की सार्थकता तो उसके फूल में ही है।

फिर इन तीनों का सम्बन्ध परस्पर इतना गहरा है कि आप इन्हें अलग-अलग कर भी नहीं सकते। नई अर्थनीति और राजनीति के साथ एक नई संस्कृति का विकास हमारी आँखों के सामने हो रहा है—भले ही हम उसे देख न पायें या उसकी ओर से अपनी आँखें मूँद लें।

अन्य क्षेत्रों में हमारी पंच-वार्षिक, दश-वार्षिक योजनाएँ आ रही हैं, किन्तु क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि संस्कृति के विकास में प्रगति देने के लिए एक भी व्यापक योजना हमारे सामने नहीं आ रही है!

नई संस्कृति की ओर

गत पचास वर्षों के राजनीतिक आर्थिक संघर्षों ने हमारे दिमाग को इतना मोथरा बना दिया है कि संस्कृति की सुकुमार दुनिया हमारी पथराई आँखों के सामने आकर भी नहीं आ पाती।

गेहूँ हमारी आँखों पर इस कदर छाया हुआ है कि गुलाब को हम देखकर भी नहीं देख पाते।

गेहूँ के सवाल को हल कीजिये, और ज़बर हल कीजिये, किन्तु किसलिए? आदमी सिर्फ चारा या दाना खानेवाला जानवर नहीं है। गेहूँ तक आदमी और जानवर में फर्क नहीं था—आदमी को आदमी बनाया गुलाब ने।

समाज की सारी साधनाओं की परिणति उसकी संस्कृति में है। जड़ में खाद-पानी दीजिये; तीनों की रक्षा कीजिये; किन्तु नज़र रखिये फूल पर!

फूल पर, गुलाब पर, संस्कृति पर!

नए समाज की वह हर योजना अधूरी है,—।

जिसमें नई संस्कृति के लिए स्थान नहीं।

× × ×

सूरज डूबने जा रहे थे, उन्होंने कहा कौन मेरे पीछे इस संसार को आलोक देगा!

चाँद थे, सितारे थे—सब चुप रहे। छोटा सा मिट्टी का दीया। उसने बढ़कर कहा—देवता यह भारी बोझा मेरे दुर्बल कंधों पर!

कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर की यह एक कड़ी है।

जब राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्र दूसरी बड़ी-बड़ी योजनाओं में लगे हैं; ओ कलाकारो चलो, हम अपनी परिमित शक्ति से इस क्षेत्र में कुछ काम कर दिखायें।

आखिर यह क्षेत्र भी तो हमारा ही है। गुलाब की खेती के माली तो हमी हैं; फूलों के संसार के भौरे तो हमीं हैं। हम न करेंगे तो करेगा कौन?

हमारी यह गुलाब की दुनिया, फूलों की दुनिया—रंगों की दुनिया: सुगन्धों की दुनिया—इतनी सुकुमार इतनी नाजुक दुनिया है कि कहीं अर्थशास्त्रियों के हथौड़े और राजनीतिज्ञों के कुल्हाड़े उसका सर्वनाश न कर दें या प्रेमचन्द के शब्दों में—'रक्षा में हत्या' न हो जाय!

इसलिए, हमें ही यह करना है! उन्हें कुछ दूरदूर ही रखना है।

नई सस्कृति—नये समाज के लिए नई संस्कृति! किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि हम पुरानी संस्कृति के निन्दक या शत्रु हैं। पुरानी संस्कृति की सर जमीन हो पर तो नई संस्कृति की अट्टालिका खड़ी करनी है हमें!

पुरानी सस्कृति से हम प्रेरणा लेंगे। पाठ लेंगे वह हमारी विसारत है, हम उसे क्यों छोड़ेंगे?

किन्तु पुरानी संस्कृति नष्ट हो रही है; क्योंकि उसमें सड़न आ गई है—घुन लगा हुआ है। इसलिए नई संस्कृति की रूप-रेखा नई होगी ही; नए साधनों को अपनाने से भी हम न हिचकेंगे।

हमारा उद्देश्य होगा, संस्कृति और जीवन के सांस्कृतिक पहलू का इस प्रकार विकास करना कि हमारा सामाजिक जीवन स्वतंत्रता, समता

और मानवता के आधार पर पुनर्संगठित हो और वह सौन्दर्य एवं आनन्द को पूर्ण रूप से कर सके।

हाँ स्वतंत्रता, समता, मानवता ! नई संस्कृति के आधार तो यही हो सकते हैं !

किन्तु इनका अर्थ हम सिर्फ राजनीतिक और आर्थिक अर्थों में नहीं लगाते। तीसरा शब्द मानवता हमारे उद्देश्य को स्पष्ट और पुष्ट कर देता है !

हम सारी दासताओं से—सारी विषमताओं से मानवों को मुक्त कर उनके परस्पर के सम्बन्ध को विशुद्ध मानवता पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। क्योंकि हम मानते हैं कि तभी आदमी अपने जीवन में सौन्दर्य और आनन्द की उपलब्धि कर पायेगा।

सौन्दर्य आनन्द ! नई संस्कृति को इसी ओर चलना है, बढ़ना है !

आज के समाज में कुरूपता ही कुरूपता है. पीड़ाओं की विविधता है, बहुलता है। हम इसे सुन्दर बनायेंगे—हम इसे सुखी बनायेंगे।

लेखकों को, कवियों को, पत्रकारों को हम इकट्ठा करेंगे कि वे परस्पर विचार-विनिमय करके जनता के जीवन के अभावों और अभियोगों का सही चित्रण करें और साहित्य को उस पथ से ले चलें जिसके द्वारा जनता स्वतन्त्र और पूर्ण जीवन का उपभोग कर सके।

इतना ही नहीं—जो कलाकार नाटक, संगीत, नृत्य और चित्रकारी में लगे हैं, उन्हें भी एकत्र करेंगे और उन्हें प्रोत्साहित करेंगे कि वे अपनी कलाकृतियों में जनता की इच्छाओं और आकांक्षाओं को प्रतिफलित होने दें और सामाजिक जीवन को सौन्दर्यमय बनाकर उसे आनन्द से परिप्लावित करें।

इस तरह हम उन सभी कलाकारों का आह्वान कर रहे हैं जो अपनी लेखनी, कूची 'वाणी या यंत्रों द्वारा समाज को 'सत्यं' 'शिवं' सुन्दरम्' की ओर ले जाने में लगे हैं किन्तु एक व्यापक संगठन नहीं होने के कारण जिनकी साधनाएँ इच्छित फल नहीं दे पा रही हैं।

इनका संगठन करके हम शहरों और गाँवों में ऐसे सांस्कृतिक केन्द्र खोलना चाहते हैं जिनमें उनकी कलाकृतियों का प्रदर्शन हो सके और जहाँ से नई संस्कृति का सन्देश भिन्न-भिन्न साधनों द्वारा हम देश के कोने-कोने में फैला सकें।

× × ×

हम बार-बार जनता पर जोर दे रहे हैं—क्योंकि हमने देखा है और दुख के साथ अनुभव किया है कि आज की संस्कृति कुछ अभिजात्य लोगों तक ही सीमित और परिमित है।

नया समाज जनता का समाज होगा; नई संस्कृति को भी जनता की संस्कृति होनी है।

नये समाज का भविष्य महान है; नई संस्कृति का भविष्य महान है।

अब तक की संस्कृति मानवता के सैकड़े पाँच का भी सही प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती थी, जो सौ में सौ का प्रतिनिधित्व करेगी, वह कितनी बड़ी चीज होगी — कल्पना कीजिये।

कितनी बड़ी चीज, कितनी शानदार चीज!

[illegible]

लिदान, दया-क्रोध, पीर-रुदन का वह चित्रण और उनको ही कलम ा कूची वाणी या यंत्र द्वारा।

सदियों से अवरुद्ध निर्झरणी जब एकाएक शैल शृङ्ग से फूट ड़ेगी। युगों से पिंजर-बद्ध विहगी जब वन-विटपी की फुनगी पर, ोलते हुये कलरव कर उठेगी।

कल्पना कीजिये, खुश होइये और आइये हमारे इस सदुयोग में ाथ बटाइये।

———

८

कुछ क्रान्तिकारी विचार

(बर्नार्ड शॉ के क्रान्तिकारियों के जेबीकोष से)

क्रान्तिकारी वह है जो तत्कालीन सामाजिक विधान को परित्याग कर नये की परीक्षा करना चाहता है।

जो जिन्दगी में ख़ास महत्व प्राप्त करते हैं, वे सब के सब क्रान्तिकारी की हैसियत से जिन्दगी शुरू करते हैं। जो जितना महान होता है, वह ज्यों-ज्यों बूढ़ा होता है, उतना ही क्रान्तिकारी होता जाता है; यद्यपि लोग उसे कट्टरपंथी समझने लगते हैं, क्योंकि सुधार के प्रचलित तरीकों पर से उसका विश्वास उठता जाता है।

जो आदमी तत्कालीन समाज के विधान को समझते हुए भी अपना तीस साल की उम्र के अन्दर क्रान्तिकारी नहीं है, तो समझो वह पूरा आदमी नहीं है।

× × × ×

जिसमें ताकत है, वह करता है। जिसमें ताकत नहीं, वह उपदेश देता है।

विद्वान आदमी उस आलसी का नाम है, जो अध्ययन के ज़रिये वक्त बरबाद करता है। उसके झूठे ज्ञान से बचो; उसके ज्ञान से अज्ञान अच्छा।

ज्ञान तक पहुँचने की एक सड़क है—सतत कार्य।

× × ×

जो आदमी अपनी भाषा का मर्मज्ञ नहीं है; वह दूसरी भाषा सीख नहीं सकता।

× × ×

जिस तरह मृत्यु की क्षति पूर्ति नहीं की जा सकती, उसी तरह कैद की भी क्षति पूर्ति नहीं हो सकती।

मुजरिम कानून के हाथों नहीं मरता है—वह आदमी ही के हाथों मारा जाता है।

फाँसी की तख्ते पर की गई हत्या सब हत्याओं से बुरी है; क्योंकि यह हत्या समाज की स्वीकृति से की जाती है!

जुर्म वह खुदरा माल है, जिसके थोक माल का नाम है कानून।

जब तक जेलखाना कायम है, तब तक यह सवाल फिजूल है कि हममें से कौन उसके बारिकों में है।

ज़रूरत सिर्फ यह नहीं है कि हम फाँसी पाये हुए मुजरिम को हटा दें। अब ज़रूरत यह है कि हम फाँसी पाये हुए समाज को ही हम हटा दें।

× × ×

प्राउधों ने कहा था--धन चोरी का माल है। इस विषय पर इससे ज्यादा सही बात कभी नहीं कही गई।

× × ×

उस आदमी से डरो जिसका भगवान आस्मान पर रहता है।

× × ×

पाप से बचने का नाम पुण्य नहीं है। पुण्य वह है जिसमें पाप की ओर प्रवृत्ति नहीं जाय।

× × ×

जिन्दगी का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करने की कला का ही नाम किफायतशारी है।

× × ×

बेवकूफ राष्ट्रों में प्रतिभाशील व्यक्ति देवता बना दिया जाता है—उसकी पूजा सब करते हैं; किन्तु उसके रास्ते पर कोई नहीं चलता।

× × ×

आनन्द और सौन्दर्य सहकारी पैदावार हैं

खुशी और खूबसूरती सीधे बेवकूफी तक पहुँचाती है।

सुन्दरी नारी से आजीवन आनन्द पाने की कामना ठीक वैसी ही है, जैसा हमेशा मुँह में शराब भरे रखकर उसका मज़ा पाने की चेष्टा करना।

बड़ा-से बड़ा आनन्द ज्यादा देर तक उपयोग किये जाने पर असहनीय पीड़ा पैदा करता है।

जिसके दाँत में दर्द होता है, वह समझता है कि सभी अच्छे दाँतवाले सुखी हैं। गरीबी से परेशान आदमी धनियों के बारे में ठीक ऐसा ही सोचता है।

आदमी के पास उसकी जरूरत से ज्यादा जितनी ही चीज़ें इकट्ठी होती हैं, उतना ही वह चिन्ता से चूर होता जाता है।

कुरूप और दुःखी संसार में धनी आदमी सिर्फ मदापन और तकलीफ़ ही खरीद सकता है।

बदशकली और बदबख्ती से बचने के लिए धनी उन्हें और भी बढ़ा देता है। महलों की एक-एक गज रौनक झोपड़ियों की विभीषिका को बीघों में बढ़ा देती है।

× × ×

आज के जमाने में भला आदमी वह है जो बिना उपजाये ही उपभोग करे।

आधुनिक भद्रता के मानी है परोपजीविता।

भले आदमी के लिए देश का दुश्मन होना जरूरी है। लड़ाई में वह अपने देश की रक्षा के लिए नहीं लड़ता, बल्कि इसलिए

लड़ता है कि कहीं उसके बदले कोई विदेशी उसके देश को नहीं लूटे। इन लड़ाकू लोगों को देश भक्त कहना वैसा ही है, जैसे हड्डी के लिए लड़नेवाले कुत्ते को पशुओं का हितैषी समझना।

यदि आप शिक्षा में, कानून में और शिकार में विश्वास करते हैं, तो सिर्फ थोड़ा धन मिल जाने से ही आप भले आदमी बन जायँगे।

× × ×

आदमी अनुभव के अनुपात में नहीं, अनुभव ग्रहण करने के अनुपात में बुद्धिमान होता है।

सिर्फ अनुभव से ही बुद्धि आती, तो राजधानी की सड़कों के रोड़े सबसे ज्यादा बुद्धिमान होते।

+ + +

जवानी के सौ खून माफ हैं—लेकिन जवानी अपने को नहीं माफ करती। बुढ़ापा अपने को माफ कर देता है, लेकिन उसे माफ नहीं किया जाता।

जहाँ ज्ञान नहीं है, वहाँ अज्ञान विज्ञान का नाम पाता है।

स्वामित्व की उपार्जित भावना प्राकृतिक भावनाओं से ज्यादा मज़बूत होती है।

उस आदमी से होशियार रहना, जो तुम्हारे घूसे का जवाब नहीं देता। वह न तुम्हें क्षमा करता है और न तुम्हें यह मौका देता है कि अपने को क्षमा करलो।

दो भूखे आदमी एक भूखे आदमी से दुगुने भूखे नहीं हो सकते, लेकिन दो शैतान आदमी एक शैतान आदमी से दस गुने ज्यादा ज़हरीले हो सकता है।

विनाश को तभी अपनाया जाता है, जब वह उन्नति का बुर्का पहन लेता है।

सामाजिक समस्याओं पर माथा पच्ची करना फिज़ूल है—ग़रीबों की एक ही समस्या है, वह है गरीबी; धनियों की एक ही समस्या है, वह है बेकारी!

६
वर्ग-विहीन जाति-विहीन

गांधीजी ने कहा था कि वह इस देश में एक वर्ग-विहीन और जाति विहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं उस विश्ववंद्य महात्मा ने इस एक वाक्य में हिन्दोस्तान की सारी समस्याओं का निदान बता दिया था। आइये, हम इस ऋषि-सूत्र की थोड़ी व्याख्या कर देखें।

संसार में पहले वर्ग नहीं था। सभी आदमी हिल-मिलकर रहते थे। सब मिलकर मेहनत करते थे, सब मिलकर उपभोग करते थे। बैठे रहकर खाने का हक उन्हें ही था, जो बूढ़े थे या बीमार थे। स्वस्थ मानव परिश्रम न करे, यह सोचा भी नहीं जा सकता था। उन दिनों सब हिल-मिलकर शिकार करते, कंद-मूल संग्रह करते, मछली मारते, फिर सब मिलकर पकाते-खाते। इससे निवृत्त होने के बाद सभी गाते, बजाते—आनन्द और मौज करते। परिश्रम भी सार्वजनिक था, मनोरंजन भी सार्वजनिक था।

किन्तु, धीरे-धीरे समाज में व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना बढ़ी। कृषि ने उस भावना को पुष्ट किया, व्यापार ने काले साँप को पंख दे दिये। व्यक्तिगत सम्पत्ति के विकास के साथ ही आदमी वर्गों में बँटने लगा। एक वर्ग वह, जिसने उत्पादन के साधनों पर कब्जा किया और दूसरा वर्ग वह; जो लाचार किया गया उन साधनों पर, सिर्फ पेट पालने की कीमत भर में मेहनत करने के लिए! स्वेच्छापूर्वक आदमी ने यह ज़िल्लत कबूल नहीं की। युद्ध में पकड़े गये या खरीदे गये दासों

से ही पहले यह काम लिया गया। किन्तु धीरे-धीरे ऐसे दिन आये कि सिर्फ एक मुट्ठी लोग स्वतन्त्र रह गये और बाकी सब के सब कृत-दास बन गये। एक मुट्ठी लोग—जिसके हाथ में उत्पादन के सारे साधन आ गये और उन्होंने पूरे समाज का शोषण प्रारम्भ कर दिया।

इस शोषण के कितने रूप रहे हैं। इस शोषण के खिलाफ कितने विद्रोह हुए हैं। कार्ल मार्क्स ने बताया सभ्य संसार का इतिहास वर्ग-युद्ध का इतिहास है। सारा संसार वर्गों में बटा हुआ है और दोनों में आये दिन लड़ाइयाँ होती रहती हैं। संसार का कल्याण इस बात में है कि ये लड़ाइयाँ बन्द हों। ये लड़ाइयाँ तभी बन्द हो सकती हैं, जब समाज में वर्ग नहीं रहे। इसलिये मानव समाज और संसार की मंगल-कामना चाहनेवाला हर आदमी का यही कर्त्तव्य होगा कि वह फिर से एक वर्ग-विहीन समाज का संस्थापना करने में ही अपने सारे प्रयत्नों को उत्सर्ग करे।

आज का जो हमारा समाज है, वह वर्गीय समाज का निकृष्टतम रूप है। समाज में इतना विभेद कभी नहीं देखा गया। समाज के सिर्फ एक फीसदी लोगों के हाथ में समाज की सारी सम्पदा इकट्ठी हो गई है। वे गुलछर्रे उड़ाते हैं, मौज करते हैं, रंगीनियाँ बिखेरते फिरते हैं। सैकड़े निन्यानवे लोग भूख, फटेहालो, बीमारी, अज्ञान और अकाल मृत्यु के शिकार हैं। विषमता ने सारी नैतिकता की नींव हिला दी है—इतनी झूठ, बेईमानी और दुराचारिता शायद ही कभी देखी गई हो।

समाज में इतनी हिंसा भी कभी नहीं देखी गई। वर्ग-युद्ध इतना भयानक कभी नहीं था। शोषितों के महा-समुद्र में ज्वार ही ज्वार है। वह शोषकों के जहाज़ को निगलने के लिए रह-रहकर उमड़

उठता है। शोषक भी अपने जहाज़ को बचाने के लिए कम प्रयत्नशील नहीं है। रोज़ ही मुठभेड़—हड़ताल, लाठी चार्ज, गिरफ़ारियाँ। पुलिस, फौज, वकील, न्यायाधीश! शोषक;—शोषितों के इस संघर्ष के कारण दुनिया की प्रगति रुक-सी गई है। विज्ञान ने जो उन्नति की है, उसे काम में लाया जाय, तो प्रतिदिन सिर्फ एक घंटा काम करके मानव समाज उन सभी सुखों का उपभोग कर सकता है, जिसकी कल्पना उसने देवताओं के समाज में ही की थी! नन्दन-कानन, पुष्पक-विमान, कामधेनु, कल्पवृक्ष सभी उसके पास आ गये हैं। किन्तु वर्ग-संघर्ष ने उसके पैरों में जंजीरें डाल रखी हैं। अमृत-कलश उसके सामने है, किन्तु वह बढ़ नहीं पाता—वह छटपट कर रहा है।

मानवता को इस जंजीर से मुक्त करना ही है। वर्ग-भेद का नाश करना आवश्यक है। एक वर्ग-हीन समाज स्थापित करना आवश्यक है। सभी सुरुचिसम्पन्न व्यक्ति की यही आकांक्षा होनी चाहिये। फिर आधुनिक संसार के सर्वोत्तम व्यक्ति गांधीजी की भी यही आकांक्षा हो, तो आश्चर्य क्या?

किन्तु, हिन्दुस्तान में वर्ग के साथ ही एक और भीषण रोग है; वह है जाति-विभेद का। वर्ग-भेद का ही एक रूप है यह जाति-भेद। किन्तु, एक ही जगह से निकली दो नदियों में से एक जा गिरी है अरब-सागर में, दूसरी वंगीय सागर में। अब जाति-भेद एक स्वतन्त्र संस्था ही बन गया है। वर्ण-व्यवस्था चाहे समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए कायम की गई हो या वर्ग-भेद को अर्धभौतिक रूप देने के लिए—किन्तु, अब यह इतनी बुरी चीज़ हो गई है कि ऐसे लोग भी इसके दुश्मन हैं, जो वर्ग-भेद के उपासक हैं। क्योंकि यह जाति-भेद उन लोगों के विकास में भी बाधक हो रहा है। चार

वर्गों में सबसे उत्तम ब्राह्मण! जब तक समाज विकास के निम्नस्तर में था, पुरोहित ही समाज के नेता थे,—पुरोहित का अर्थ भी नेता ही होता है। किन्तु, समाज उस स्तर से ऊपर उठा, तो क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के नेतृत्व को चुनौती दी। बौद्धधर्म इस चुनौती का सही प्रतिनिधित्व करता है। धर्मोपदेश का एकाधिकार ब्राह्मणों के हाथ से छीनकर क्षत्रियों ने अपने हाथों में लिया। बौद्ध धर्म के प्रमुख प्रचारक क्षत्रिय ही रहे। उन्होंने उन ब्राह्मणों का भी तिरस्कार नहीं किया, जिन्होंने उनका नेतृत्व स्वीकार किया और दुनालि ऐसे शूद्र को भी अपने नेतृत्व में हिस्सा देकर सारे जन-समाज को अपनी ओर कर लिया।

क्षत्रियों के बाद वैश्यों का प्रभुत्व हमारे यहाँ भी स्थापित होता। बौद्धधर्म में श्रेष्ठि-पुत्रों और श्रेष्ठि-कन्याओं की प्रमुखता हम देखते हैं। किन्तु, लगभग एक हजार सालों तक बाहरी आक्रमणों और प्रत्याक्रमणों के कारण भारतीय समाज का विकास रुका रहा। विदेशी आधिपत्य ने क्षत्रियों और वैश्यों दोनों के अभ्युत्थान को पीछे ढकेल दिया। किन्तु, विकास की गति कब तक रुकी रहती? अंग्रेजों के आगमन के साथ ही व्यापारियों की प्रभुता का श्रीगणेश अपने देश में होना ही था। आज हमारे देश में वैश्यों का दौर शुरू हो गया है—वैश्यों का—पूँजीपति और महाजनों का। और, इस दौर के साथ ही श्रमिकों का अभ्युदय भी अनिवार्य था। आज देश में श्रमिक जाति भी सर उठाने लगी है।

जब तक वर्ण व्यवस्था है, पूँजीपतियों को समाज में सर्वोच्च आसन नहीं मिल सकता—जैसा कि इंगलैंड आदि में मिल गया है। बड़े-बड़े सेठों को दरिद्र ब्राह्मणों के निकट सर झुकाना होता है। इसलिए पूँजीपति भी जाति-भेद के दुश्मन हो रहे हैं। और

श्रमिक तो इस वर्ण-व्यवस्था को तोड़ना चाहेंगे ही; क्योंकि यद्यपि वे ही समाज की असल रीढ़ हैं, तो भी इस व्यवस्था ने समाज में उनका सबसे निम्न स्थान दे रखा है।

जाति-भेद का वर्तमान रूप भी वर्गभेद के रूप से कम घिनौना नहीं है। इसने मानवता को ऐसे टुकड़ों में बाटा है, जिसके लिए कोई भी तर्क नहीं दिया जा सकता। मूर्ख से मूर्ख लोग भी प्रणम्य हैं, क्योंकि उन्होंने ब्राह्मण या क्षत्रियकुल में जन्म लिया है। मानवता के एक चौथाई हिस्से को तो समाज में वह भी स्थान नहीं जो कुत्तों को मिला है। वे अछूत हैं, अस्पृश्य हैं। जाति-जाति में तो छुआछूत की दीवारें खड़ी हैं ही; एक जाति के अन्तर्गत भी अनेक भेद-भाव हैं। इस जाति-भेद ने समूचे समाज को बारह बाँट बना रखा है। जब तक जाति-भेद है, एक सुपुष्ट राष्ट्र का निर्माण नहीं किया जा सकता। इसका भी जितना जल्द उच्छेद हो, देश और समाज के लिए कल्याण का मार्ग उतना ही प्रशस्त हो जाय।

इधर इस जाति-भेद ने एक और घृणित रूप ले लिया है! इस जाति-भेद का प्रयोग कुछ स्वार्थी लोग राजनीति के मामलों म करने लगे हैं। चुनावों के अवसरों पर मिनिस्ट्री बनाने या स्थानीय बोर्डों के अध्यक्षों के निर्वाचन के समय उसका भद्दा से भद्दा रूप सामने आता है। इसने तो कोढ़ में खाज पैदा कर दी है और अब अधिक दिनों तक इस कोढ़ को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।

नौजवानों को इस ओर सबसे आगे कदम बढ़ाना है। जाति और वर्ण के भेद-भाव को प्रगट करनेवाले चिन्हों का उन्मूलन के साथ विवाह आदि में भी इस बंधन को तोड़ना है। नामों के साथ जाति-सूचक आस्पद भी हटा ही देना चाहिये। राजनीति में जो

जाति-भेद लावे हैं, उनका बहिष्कार तो कोढ़ियों की तरह करना चाहिए।

हिन्दुस्तान के लिए वह शुभ दिन होगा, जब गांधीजी की कल्पना के अनुसार यहाँ एक वर्ग-विहीन और जाति-विहीन समाज स्थापित हो जाय। सारा मानव-समाज एक कुटुम्ब के रूप में परिणत हो जायेगा, जिसमें सभी सुखी होंगे, सभी निरामय होंगे, सभी सब का कल्याण चाहेंगे, किसी को तनिक भी दुःख नहीं होगा।

१०

क्रान्तिकारी कृष्ण

कृष्ण, आज इस कारागार में भी हम तुम्हारी जन्म-तिथि मना रहे हैं– तुम्हारे यश का कीर्तन कर रहे हैं, कवितायें बना रहे हैं, लेख लिख रहे हैं। किन्तु मुझे शक होता है तुम्हें यह सब आयोजन पसंद पड़ेगा कि नहीं; क्योंकि तुम प्राचीनता के अन्ध अनुकरण के कट्टर दुश्मन थे, नवीनता के अनन्य उपासक थे—तुम क्रान्तिकारी थे।

लोग युगों से इन्द्र की पूजा करते थे—मेघराज के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पितकर उनसे अन्न-जल पाने की आशा रखते थे तुमने कहा–"क्यों, इन्द्र की पूजा क्यों? जिसको कभी तुमने देखा नहीं, जिसके बारे में तुम कुछ निश्चित जानते नहीं, उसकी पूजा? केवल उसके 'धनुष' की रंगीनियों पर मुग्ध होकर, या उसकी चंचला, असि से डरकर? यह तो मूर्खता है, कायरता है। इससे तो इस पर्वत का पूजना अच्छा, जो तुम्हारी गौओं को घास और तुम्हें फल-फूल देता है। गोली मारो उस कोरी कल्पना के देवता को, पूजो प्रत्यक्ष देवता को"। बस, इन्द्र की पूजा खतम हो गई, गोवर्द्धन पूजा गया—पानी के देवता हो गये—प्रत्यक्षवाद का दमामा बज उठा।

इतना ही नहीं; उस समय इसी प्रकार के अन्य वैदिक यज्ञों का दौर-दौरा था। लोग यज्ञ-जापों को ही सब कुछ समझते थे—कोई हवन पर ज़ोर देता था, कोई इन्द्रियों के अस्वाभाविक नियंत्रण को ही सब कुछ समझता था, कोई खाना-पीना छोड़कर निराहार तपस्या में लीन रहता था। कोई साँस को मस्तक पर चढ़ाकर योग साध रहा था

(गीता अध्याय ४) । तुमसे भला यह पाखंड कब देखा जाता ! तुमने कड़ककर कहा —'इन वैदिक चक्करों में क्यों फँसो'—'अरे ज्ञान-यज्ञ ही सबसे बड़ा यज्ञ है। अपने को पहचानो, समयानुसार अपना कर्त्तव्य निश्चित करो और उसमें पिल पड़ो—कहाँ स्वर्ग, कहाँ नरक ! एक शरीर छोड़ोगे, दूसरा तैयार मिलेगा-सिला सिलाया नये कपड़े की तरह बनाबनाया ! कहाँ ईश्वर, कहाँ जीव-तुम आत्मा हो, अजर हो, अमर हो; यह तुम्हारा रूपा ही ईश्वर है, अनादि है, अनन्त है। बस हम और तुम—और दोनों दुनिया मुट्ठी में। कैसा पुरुषार्थ। सब झंझटों से छुट्टी !

यों उस समय के विचार-प्रवाह को ही तुमने पलट दिया—जो धारा 'स्वर्ग' की तलाश में भटक रही थी, उसे हृदय की ओर मोड़ दी। यह जानते हुये भी कि वेद को लोग ईश्वरीय रचना मानते हैं; तुमने बेधड़क कह दिया—'त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' कितना बड़ा साहस—सिवाय क्रान्तिकारी के ऐसा साहस किसमें होगा।

किन्तु केवल प्रचलित विचार-प्रवाह को ही बदलना क्रान्तिकारी का काम नहीं होता—'थियोरी' के साथ वह 'ऐक्शन' पर भी पूरा ध्यान देता है। वह जहाँ कहीं अत्याचार देखता है, भिड़ जाता है—लड़ पड़ता है। और इसमें वह अपने पराये किसी की परवाह नहीं करता — वह अपने स्वजन को मार सकता है। किसी के हाथों उसके गुरु-पितामह आदि की हत्या करा सकता है। यहाँ तक कि अपने बेटे-पोते भी अनाचार की ओर बढ़ें, तो उनका नाश निर्विकार रूप में देख सकता है। मथुरा, कुरुक्षेत्र और द्वारका की रक्तरंजित भूमि इसकी साक्षी है।

हाँ, मेरे कृष्ण ! जिसने तुम्हारे जीवन को गौर से अध्ययन किया है, तुम्हें क्रान्ति के रंग में सराबोर पाया। शायद तुम्हारे

'भक्त' इसको सुनना भी पसंद न करें, किन्तु तुम उन्मुक्त प्रेम free love के भी कट्टर समर्थक थे। प्रेम ऐसे पवित्र स्वर्गीय चीज को जंजीरों में बाँधना तुम्हें कैसे पसंद हो सकता था? गोकुल की रास-लीला, मथुरा का दासी प्रेम, रुक्मिणी-उद्धार और अपनी बहिन सुभद्रा को अर्जुन के साथ भगा देने में तुम्हारा हाथ—इसके पक्के उदाहरण हैं, भले ही कोई इस ओर से आँख मूँद ले।

किन्तु 'फ्री लभ' का प्रचारक होते हुए भी क्रान्तिकारी विषयी नहीं हो सकता—अपनी भोग-भावना को कर्म-साधना का बाधक वह नहीं बनने दे सकता। प्राण-प्रिया गोपिकाओं के प्रेम को तुमने कर्तव्य की वेदी पर बलि दे दिया। आह! इतनी बड़ी ट्रेजडी' का सदमा केवल क्रान्तिकारी का हृदय ही बर्दाश्त कर सकता है।

और, त्याग—यह तो क्रान्तिकारी जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है। कंस का संहारकर या उसके कितने ही राजाओं का नाश कर, तुम चाहते, तो एक अच्छा साम्राज्य अपने लिए कायम कर सकते थे। किन्तु सब विभवों को ठुकरा दिया। हम तुम्हारे नाम पर यह आयोजन कर रहे हैं, कांग्रेस कमिटी के मंत्रित्व तक के लिये सब दुष्कर्म करने को तैयार रहते हैं—प्रोपैगंडा करते हैं, मोटर दौड़ाकर वोटर इकट्ठा करते हैं, एक दूसरे के सिर फोड़ने को तैयार रहते हैं। कृष्ण! इस पवित्र दिन को थोड़ा हममें त्याग भर दे।

तुम्हारा उदय हुआ—कारागार में, झंझा और झकोरों के बीच। तुम्हारा अस्त हुआ—एकाकी विजन में, व्याध के शराघात से। उदय के समय भय के मारे किसी के होठ पर हँसी न देखी गई, अस्त के तुम्हारे शव के निकट कोई रोनेवाला भी न था!!

यही तो है क्रान्तिकारी का जीवन!!!

हजारी बाग जेल;

कृष्णाष्टमी १६४०.

११
जीवन और मरण

मैंने अपने एक नाटक में लिखा है—जीना एक कला है। दूसरे नाटक में लिखने जा रहा हूँ—मरना भी एक कला है।

हाँ, जीवन और मरण दोनों ही कला हैं।

और, कला क्या है ?

कला वह सुन्दर उपादन है, जिसकी सृष्टि मानव-द्वारा होती है। इन्द्रधनुष सुन्दर है, किन्तु वह कला नहीं है। किसी नन्दलाल बोस या किसी रवीन्द्रनाथ की कूची या कलम से उतरने पर ही इन्द्रधनुष की प्रतिकृति कला हो जाती है। मानव-कृति से परे की चीज़ कला नहीं कहला सकती।

जब हम कहते हैं, जीना कला है, तो हम मानते हैं कि आदमी का प्रयत्न इसमें लगा है और वह प्रयत्न सौन्दर्य की ओर उन्मुख है। सौन्दर्य यहाँ छोटे अर्थ में नहीं लिया गया है—इन्द्रधनुष की रंगीनियों में ही सौन्दर्य नहीं है; काली भयावनी रात में भी सौन्दर्य है और यदि उसके बीच जगनू चमक जाते हैं तो सौन्दर्य की इकाई पर अगणित शून्य पड़ते जाते हैं वह दस गुना, सौगुना, हजार गुना बढ़ जाता है।

जीना कला तब है, जब वह सौन्दर्य की ओर अग्रसर हो रहा है। सुन्दर ही सत्य है। सुन्दर जीवन—सच्चा जीवन तभी है !

किन्तु अन्य कलाओं की तरह जीने की कला भी सीखनी पड़ती है—सिर्फ सिद्धान्त रूप में नहीं, कार्य रूप में !

यह लकीर इस तरह खींचो, यहाँ यह रंग दो, रंग और लकीर में यह तारतम्य रखो—सिर्फ ऐसे सिद्धान्त सुनने से कला नहीं आती। कला अभ्यास खोजती है, सतत प्रयोग खोजती है पहले बताये रास्ते पर चलना पड़ता है; किन्तु कला की उत्कृष्टता तब सिद्ध होती है, जब अपने लिए रास्ता बनाने की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

जीने की कला पर भी यही लागू है। जीवन के जितने कलाकार उनकी ओर देखिये, तो बात स्पष्ट हो जाय।

हमारी इस दुनिया के जीवन के सबसे बड़े कलाकार हैं गांधीजी। गांधीजी के जीवन पर ही हम एक दृष्टि डालें!

छोटा-सा बच्चा, एक राज्य के दीवान के आँगन को दीवाना बनाता-सा। कुछ भोंदू कुछ बदमाश। जूठी बीड़ियों पर ललचना; अखाद्य भोजन पर लार टपकाना। बाप मर रहा; आप बीवी से रंगरलियाँ मचा रहा। किन्तु, जीवन में एक धक्का! चौंकता है, नहीं यह जीना जीना नहीं। जीना तो कला है। इस कला का अभ्यास करना शुरू करना है। पहले आधुनिक युग के जीवन के महान् कलाकारों का पदानुसरण करता है - इमर्सन, टालस्टाय, थूरो। अभ्यास से आत्मबल प्राप्त होता है—फिर आप रास्ता निकालता है। सत्य, अहिंसा, निभय; अपरिग्रह जीवन की कला के नये-नये 'पेटर्न' तैयार करने लगता है। आज संसार उसकी कला की ओर आश्चर्य से देख रहा है!

अभ्यास, सतत अभ्यास! प्रयोग, सतत प्रयोग—कला की निपुणता का रहस्य यह है। आप अगर सच्चे अर्थ में जीना चाहते हैं, जीवन को कला के साँचे में ढालना चाहते हैं तो यही रास्ता आपके लिये भी खुला है!

किन्तु जीवन की मंजिल बहुत बड़ी है; जाने की कला भी

बहुत पेचीदी है। इसमें धीरज चाहिये, संयम चाहिये। यदि इस धीरज संयम का अभाव आपमें हो, तो मरने की कला सीखिये।

घबड़ाइये मत ; मरण उतना भयानक नहीं है, जितना आप समझ रहे हैं। यह कुसंस्कार का फल है। जो संस्कार आपको अन्धकार से डराता है, वही संस्कार आपको मृत्यु से भयभीत करता है। अन्धकार को आप जीत रहे हैं, मृत्यु को भी आप जीत लेंगे।

इस जीत-हार में देर हो सकती है, पर मृत्यु को तो आज भी कला बना दे सकते हैं। आप।

मृत्यु के एक आधुनिक महान् कलाकार का ही लेकर देखिये, तो बातें साफ हों। एक नाम तो बताइये, जिसने मरने को कला के रूप में परिणत कर दिया हो। बताइये—देर क्यों हो रही है? अजी, भगतसिंह का नाम जल्द क्यों नहीं ले लेते हैं! क्या आप उसे भूल रहे हैं?

हाँ, भगतसिंह—मृत्यु के कलाकारों में एक जगमगाता रत्न! वह भी जीना चाहता था, जीने की कला का वह विद्यार्थी था। किन्तु उसने देखा, यह कला लम्बी है, उलझनों से भरी है। फिर पाया, बगल में ही एक कला और है जिसकी जरूरत देश महसूस कर रहा है किन्तु उस ओर बढ़ने की हिम्मत बहुत कम लोगों को होती है! पंजाब प्रतिहिंसा की आग में जला जा रहा था; हिन्दोस्तान आत्मग्लानि के खारे समुद्र में डूबा जा रहा था। इस आग-पानी के कुचक्र को सबसे बड़ी कुर्बानी देकर ही तोड़ा जा सकता था —। वह बढ़ा।

लाहौर की गलियों में मारा मारा फिरनेवाला एक अर्द्धशिक्षित उतावला नौजवान एक ही दिन में समूचे राष्ट्र के यौवन और बलिदान का प्रतीक बन गया। जीवन कला का असफल विद्यार्थी मृत्यु कला

का आचार्यत्व प्राप्त कर गया ! गांधीजी मरकर अमर हैं, भगतसिंह मरकर अमर हो गया ! जो अमरता अनन्य साधना के बाद मिलती, वह मृत्यु की क्षणिक उपासना से प्राप्त हो गई !

जीना कला है, मरना कला है। जीना कला तब है जब साधना से उसे सुन्दरतम् और विस्तृततम बनाया जाय ; मरना कला तब है जब मृत्यु का आह्वान एक विशेष अवसर पर एक विशेष उद्देश्य से किया जाय और हँसते-हँसते उसे वरण किया जाय !

कला का प्रमाण है अमरता । वही जीवन कला है, जिसमें अमरता निहित है ! वही मरण कला है जो अमरता प्रदान करती है।

जिसमें कला नहीं, वह जीवन तुच्छ । जिसमें कला नहीं। वह मरण हेय। तुच्छ से बचो, हेय से बचो। सौन्दर्य की ओर बढ़ो महानता की ओर बढ़ो, अमरता की ओर बढ़ो—जीवन और मरण का सन्देश यही है।

———

१२

दो ताज

गुप्त काल के बाद मुगल-जमाना भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। उस मुगल-जमाने में दो ताज रचे गये—एक पत्थरों का, दूसरा अक्षरों का।

पत्थरों के ताज का रचयिता एक भूस्वामी था और अक्षरों के ताज का रचयिता एक गो-स्वामी। दोनों की प्रेरणा में स्त्री थी—एकमें स्त्री से आसक्ति, दूसरे में विरक्ति। (फ्रायड बताता है, आसक्ति और विरक्ति एक ही सिक्के के दो रुख हैं)। भू-स्वामी (शाहेजहाँ) ने अपने अनुचरों से कहा—फैल जाओ मेरे द्वारा शासित इस विस्तृत भूखण्ड में और दूसरे राज्यों में भी, और जहाँ से, जिस कीमत पर भी, जो सुन्दर सुडौल पत्थर मिले, उन्हें चुन लाओ। गो-स्वामी (इन्द्रियों के प्रभु) के पास अपनी ज्ञानेन्द्रियों के सिवा दूसरे अनुचर कहाँ ? उसने साधना द्वारा उन्हें प्रेरित किया कि जहाँ कहीं भी सत्यं, शिवं, सुन्दरम् प्राप्त हो, उन्हें संगृहीत करो।

एक तरफ पृथ्वी का कोना-कोना ढूँढ़ डाला गया; दूसरी तरफ 'नाना पुराण निगमागम' के अतिरिक्त 'क्वचिदन्यतः' भी ले लिया गया। पत्थरों के ताज का निर्माण यमुना-किनारे शुरू हुआ और अक्षरों के ताज का श्री गणेश सरजू किनारे।

समय पाकर दोनों ताज तैयार हुए—यमुना-किनारे 'महल' बना; सरजू किनारे 'मानस'। ये दोनों ताज—'महल' और 'मानस'—भारत की वैसी कलाकृतियाँ हैं, जिनके समक्ष 'पुरुष' को ही नहीं, 'काल' को भी

भी सर-नगूँ होने को वाध्य होना पड़ेगा। मानता हूँ, पत्थरों के ताज की कद्र तुरत हुई, उसका लोहा तुरत मान लिया गया और आज संसार के कोने-कोने से लोग उसे देखने को आते हैं और 'न भूतो न भविष्यति' कहकर उसके सामने सर झुकाते और चलते बनते हैं। लेकिन इसका कारण कला की उच्चता या हीनता नहीं है, बल्कि इसका भेद छिपा है—पत्थरों और अक्षरों में!

पत्थर की खूबसूरती साधारण आँखों से भी देखी जा सकती है। मूर्त सौन्दर्य पर अज्ञात के चर्मचक्षु भी अपलक हो जाते हैं। किन्तु, अक्षर के अन्दर जो खूबसूरती है—उसके देखने के लिए तो 'हिये की आँखें' ही चाहिये! काली-काली टेढ़ी टेढ़ी लकीरों के अन्दर जो शतश इन्द्रधनुष छिपे हैं, उन्हें देखने-परखने के लिए तो कुछ योग्यता की आवश्यकता है! 'महल' सब देख सकते हैं, देखते हैं; 'मानस' का अवगाहन कितनों ने किया, कहाँ तक किया!

पर हमें यह भी याद रखना है, पत्थर नश्वर है—वह धूप, वर्षा—समय के प्रहार—का शिकार है। किन्तु, अक्षर (अ-क्षर), अजर है, अमर है, बल्कि ज्यों-ज्यों समय बीतता है, उसका रंग और भी उमड़ता, निखरता जाता है! तीन सौ वर्षों में ही 'महाल' के कितने रंग उड़ गये; हो सकता है, ज़माने का एक ही जबर्दस्त थपेड़ा उसके धुर उड़ा डाले!

किन्तु, ज्यों-ज्यों वर्ष बीतते जाते हैं, शताब्दियाँ बीतती जाती हैं, 'मानस' की गहराई बढ़ती जाती है, अवगाहनार्थियों की भीड़ बढ़ती जाती है! भारत के कोने-कोने से ही नहीं, लंदन और बर्लिन से ही नहीं, मास्को और लेनिनग्राद् से भी उसकी प्रशस्ति के पूत मंत्र सुनाई पड़ने लगे हैं! वह दिन दूर नहीं जब संसार की श्रेष्ठतम कलाकृतियों में वह आदर का स्थान पायगा!

दो ताज

हमारी कामना है, भारत के ये दोनों ताज अमर हों—पत्थरों के ताज और अक्षरों के ताज; यमुना-किनारे पर बना 'ताज महल' सरजू-किनारे पर प्रारम्भ किया गया 'रामचरित मानस'! और जय हो इन दोनों के रचयिताओं की—शाहजहाँ की, गोस्वामी तुलसीदास की; क्योंकि ये दो भारत के सर्व-श्रेष्ठ कलाकारों में हैं, और वे दो भारत की सर्व-श्रेष्ठ कलाकृतियों में।

१३

पुरुष और परमेश्वर

पुरुष और परमेश्वर में महत्ता किसकी—यह विवाद आज का नहीं, आदि-युग से चला आ रहा है। एक पक्ष ने कहा—मैं ही सब कुछ हूँ, और सारा संसार मेरा है। दूसरे ने कहा—यदि वह कहीं हो भी, तो वह मैं ही हूँ! और तीसरे ने आत्म पंण किया—जो कुछ हो, तुम्हीं हो! तुम्हारी शरण हूँ, जो उपयोग करो।

एक ने कहा—भगवान ने अपने रूप में मनुष्य का निर्माण किया। दूसरे ने कहा—मनुष्य ने अपने रूप में भगवान की रचना की।

जब मनुष्य ने सपनाना सीखा, ईश्वर का प्रारम्भ तभी से हुआ।

ज्यों-ज्यों सपनों में वृद्धि हुई, भगवान की महत्ता में भी वृद्धि होती गई।

सपने धुँधले पड़ रहे हैं, भगवान भी धुँधला पड़ता जा रहा है।

सपनों में परिवर्तन : भगवान में परिवर्तन!

अतीत काल के मानव को एक भगवान से सन्तोष नहीं था—वह अनेक भगवान खोजता रहा।

उसने अनेक भगवान खोजे—उसे अनेक भगवान मिले।

पृथ्वी की नन्हीं दूब से आकाश के इन्द्रधनुष तक में उसने भगवान भगवान ही देखे।

भगवान के पीछे वह इतना पागल था कि अर्धचेतन अवस्था में उसने अपने कोभी भगवान ही मान लिया!

उसके भगवान बने उसके वे विश्वास जिनके बिना वह जी नहीं सकता था।

उसके भगवान बने उसके वे भय जिनसे बढ़कर स्थूल सत्य उसे और कुछ नहीं मालूम होता था।

भगवान को आदमी ने बनाया, यह कहना उतना ही ग़लत है, जितना यह सुनना कि भगवान ने आदमी को बनाया।

आदमी हमेशा भगवान की खोज में रहा है, और हमेशा उसकी खोज में रहेगा।

भगवान एक सपना है।

गाढ़े सपने का ही नाम भगवान है।

भगवान एक आकांक्षा है जिससे मानव-जीवन ओत-प्रोत बना है।

जीवन एक सपना है जिससे हम ओत-प्रोत बने हैं।

अपने सपने का ही नाम हमने आत्मा दे रखा है।

इसलिए आत्मा हमेशा भगवान का सपना देखती रहती है।

जैसा आत्मा का सपना; उसी रूप का भगवान।

× × × ×

ध्यानावस्थित होकर, एकान्त में, मानव बैठा था अपने संसार को भूला हुआ। अपना संसार—वह आज भी उसे समझ नहीं सकता था। विस्मय में, भय में वह चिल्ला उठा—

"भगवान, मेरी सहायता करो—तुम्हारे बिना मेरा सहायक कौन है! मुझे ज्ञान दो—क्योंकि तुम्हीं ज्ञान के आगार हो!"

मानव चिल्लाता रहा; भगवान चुप रहा।

मानव ने कृषि प्रारम्भ की। बड़े जतन से, श्रम से उसने खेत जोते; किन्तु वर्षा हो नहीं रही थी, वह चिल्ला उठा—

"भगवान मेरी सहायता करो। तुम्हारे विना कौन मेरी मदद करेगा। अपने बादलों को मेरे खेत में बरसने की आज्ञा दो।"

उत्तर म सूखी झंझा बहती रही।

मानव ने युद्धभूमि के चक्रव्यूह में अपने को प्रतिद्वंद्वी मानव के सामने पाया। भय से वह चिल्ला उठा—

"भगवान, भगवान, मेरी सहायता करो। मुझे विजयी बनाओ, मेरे शत्रुओं का नाश करो। रघुवीर तुमको मेरी लाज।"

युद्ध-भूमि में रुण्ड-मुण्ड बिखरे थे—वीरों के लोथ पर चील-कौवे भोज मना रहे थे!

आत्मा के स्वप्न देखनेवालों को परमात्मा इन्हीं रूपों में प्राप्त होते रहे हैं।

यदि कभी वर्षा हो गई; विजय मिली—तो फिर स्वप्न को सत्य क्यों न मान लिया जाय? "भगवान तुम महान् हो!" "भगवान मेरे रक्षक हैं, फिर डर किसका?"—"राखन हार भये भुज चार तो का होइहैं दो भुजा के बिगारे।"

प्रार्थना! यज्ञ! यज्ञ! प्रार्थना!

भगवान में मानव इतना भूला कि वह मानव को ही भूल गया। पुराने पैग़म्बर ने चिल्लाकर कहा—

"खुदा ने कहा—'उस आदमी पर अभिशाप जो आदमी पर विश्वास करता है और जिसका हृदय भगवान से अलग रहता है।"

आदमी पर अविश्वास, भगवान में विश्वास। किन्तु जब आदमी

पर विश्वास नहीं, तो भगवान् पर कैसे विश्वास हो ! क्योंकि भगवान और आदमी आखिर एक ही सिक्के के दो रूप हैं न ?

× × × ×

मानव-कल्पना का ही रहस्यवादी प्रतीक है भगवान की कल्पना।

विशुद्ध भगवान् का अर्थ है विशुद्ध मानव।

स्वप्न-भगवान् का अर्थ है स्वप्न-मानव।

सर्वसत्ताधारी भगवान् वह निरंकुश राजा है जो प्रजा का उत्पीड़न और शोषण करता है।

सर्वज्ञ भगवान् वह पुरोहित है जो जनता के अज्ञान पर अपना व्यापार चलाता है।

राजनीति में भगवान् का काम षड्यंत्र करना है; सम्पत्ति में भगवान का काम अधिक लोगों को दरिद्र रखना है।

मानव ने भगवान् को अपने से महान् नहीं बनाया।

× × ×

मानव ने महान् और सुन्दर भगवान् बनाये हैं—इससे मानव की महान् और सुन्दर शक्तियों का पता चलता है।

जब मानव आँधी, अंधकार या प्रकाश की अभ्यर्थना या उपासना करता था, वह अपने प्रति ज्यादा ईमानदार था, वह अधिक सरल था, उसके ज्ञान पर पर्त्त नहीं पड़ी थी।

जब उसने इनमें देवत्व या ईश्वरत्व की कल्पना की, वह भूल-भुलैया में फँसा।

जब तक मानव मस्तिष्क कल्पना के फेरे में है, हर पदार्थ उसके सामने काल्पनिक रूप पकड़कर आया करता है। मानव-चक्षु से पर्दा हटने दीजिये; वह सब कुछ स्पष्ट देखने लगेगा। मानव मन जब स्वाभाविकता को स्वभावतः ग्रहण करने में सक्षम हो जायगा, सभी काल्पनिक देव आप से आप काफ़ूर हो जायँगे।

मानव-विचार में असीम बल है। आदमी जैसा सोचता है, संसार को उसी के अनुरूप ढलना होता है। वह संसार को अपने निकट बुलाता है, उन पर अपना मंत्र पढ़ता है, संसार उसके सामने करबद्ध प्रार्थी होता है। अपने विचार के बल से मानव संसार की सृष्टि करता है।

जब तक मानव स्वय मानव के संहार में लीन है, वह ऐसे भगवान् की सृष्टि करेगा ही जो संसार का संहारकर्ता हो। कर्ता और भर्ता के रूप में भी वह भगवान् बनाता है; कर्ता, जो नब्बे अभागे और दस भाग्य-वान की सृष्टि करे; भर्ता, जो ग़रीबों का पालन करे, जिसमें वे धनियों के पैर दबावें!

समाज के विचार ही भगवान् के विचार हैं। समाज की आत्मा ही भगवान् की आत्मा है—जनता का दृष्टिकोण ही भगवान् का दृष्टिकोण हुआ करता है।

भगवान्-निर्माता के रूप में मानव ने अपनी अपरम्पार प्राकृतिक शक्ति का परिचय दिया है।

अब वह मानव-निर्माता के रूप में अपने कौशल का परिचय दे।

अब मानव मानव की उपासना करे, मानव की वन्दना करे। भगवान् की स्तुतियाँ बहुत हुईं; हमारी कविता और गीत अब मानव की अलिखित यशोगाथा को छंदोबद्ध करें। मानव की खोज में ही मानव की साधना दौड़े—उच्छ्वसित, चंचल, क्रियाशील मानव-मस्तिष्क अब अपने ही लिए अपने को पुष्पित और फलित करे।

शोधक, अन्वेषक, कवि और दार्शनिक मानव ने राह चलते कितने देव और ईश्वर बनाये। अब वह अपने लक्ष्य के निकट आ पहुँचा है—वह मानव का निर्माण करे।

मानव जिसकी शक्तियों के समक्ष छप्पन कोटि देव और देवादिदेव भगवान भी नत मस्तक हों!

× × ×

हम फिर सपने देखें—सपना देखना कोई लज्जा की बात नहीं।

आज की दुनिया में बहुत से सपने देखने को हैं—नये सुन्दर सपने!

हमें एक नये सौन्दर्य का सपना देखना है—एक नये दिन और उसके नये कर्तृत्वों के, उसके नये प्रयत्नों और नये साहसों के सौन्दर्य का सपना देखना है।

हमें सपना देखना है एक नई अभिव्यक्ति की कला का उस नई और मनोहारी कला का जो जाग्रत जनता के यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व करे; जिसमें नये, आनन्दपूर्ण और प्राकृतिक व्यवहारों की नई आकृति, नई विभूति और नई अनुभूति के रूप में सन्तुष्टि प्राप्त की जा सके।

इसमें लज्जित नहीं होना है। लज्जित नहीं होना ही नये मानव के लिए एक नई कला है। लज्जित नहीं होना ही उस नये संगीत का शिलान्यास देना है जो मानव हृदय के स्वाभाविक उच्छ्वासों का प्रतीक होगा।

मानव की शक्ति के तीन सपने हैं—

काम करने का सपना ;

रात का सपना ;

छलना का सपना ;

इन सपनों में एक ही अमर सपना है—काम करने का सपना। सृजनात्मक शक्ति का यही सच्चा सपना है। इस सपने का ही नाम जीवन है।

चाहिये ऐसा सरल मानव—

मानव—जिसमें सरल साहस हो ;

मानव—जिसमें सरल धुन हो ;

मानव—जिसमें मानवोचित अनुभूति हो ;

मानव—जो सीधा देखे ;

मानव—जो सीधा सोचे ;

सरल मानव—जो सीधा काम करे !

चाहिये जीवित मानव—जो हमें मृत्यु से बचावे ! परमात्मा की ओर हमने बहुत देखा ; अब अपने पुरुषार्थ की ओर देखें।

———

१४

तमसो मा ज्योतिर्गमय !

(गाँधीजी के बलिदान पर)

भारत का, संसार का, इतिहास का सबसे बड़ा आदमी चल बसा ।

हिमालय तिरोहित हो गया; हिन्द महासागर सूख गया । अनवरत अश्रु प्रवाह से कोटि-कोटि आँखें उस महासागर को भरना चाह रहीं हैं; कोटि-कोटि कण्ठ चित्कारों से उस हिमालय को एक बार फिर आकाश को चूमने के लिए आह्वान कर रहे हैं ! किन्तु, सारे प्रयत्न व्यर्थ जा रहे हैं ।

हमारी धरती सूनी है, सारा आकाश सूना है । हमारी वह हालत है, जो एकाएक सूर्य के टूट गिरने से कभी अखिल भुवन की हो सकती है ।

हम जो कुछ हैं, हमारा देश आज जो कुछ है, उसके निर्माण का श्रेय उसका है । धूल के कणों में उसने ज्योति दी—उन्हें चमकना सिखलाया । मुर्दा राष्ट्र को उसने मंत्र-बल से खड़ा किया, उसे लड़ना सिखलाया । लड़ना सिखाया; लड़ते-लड़ते मरना और विजय पाना सिखलाया । महान् अशोक के बाद आसेतु हिमालय पर चक्रवर्ती धर्मराज स्थापित करने का स्वप्न उसी ने देखा ।

उसने हमें सिर्फ स्वतन्त्र देश ही नहीं दिया, उस देश को वेष दिया, भूषा दी, भाषा दी । व्यक्तिगत चरित्र का एक कोड दिया; राष्ट्रगत जीवन का एक स्टैंडर्ड दिया ।

आज का जो हिन्दुस्तान है, वह गाँधी का हिन्दुस्तान है। गाँधी का यह हिन्दुस्तान उसके पवित्र रक्त से स्नानकर अमर हो—देवता, अगर हम तुम्हारे आशीर्वाद के पात्र रह गये हों, तो यही वरदान दो !

× × ×

भारत का, संसार का, इतिहास का सबसे बड़ा आदमी चल बसा !

चल बसा !

काश, यही हो पाता !

गांधी बूढ़ा था' उसे जाना था । वह जाता, हम उसके बैठे रोते ! उस दिन भी रोते ! किन्तु, हम पर तो पितृहंता का कलंक लगना था। जिसने हमारे लिए इतना किया, अपने उस राष्ट्र-पिता को हमने शान्ति की मौत भी मरने नहीं दिया !

गांधी पर गोली !—एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन ! ये तीन गोलियाँ—तीनों काल पर; तीनों लोक पर चलाई गईं गोलियाँ निकलीं ये ।

हम कहीं के नहीं रहे, हम कहीं के नहीं रहे ।

इतिहास हम पर थूकेगा ! संसार हम पर हिकारत की निगाह डालेगा !—यह पाखण्डी देश, अपनी सभ्यता की इतनी शेखी बघारता था; अपने एक संत को भी नहीं जीने दिया इसने !

यह मत कहो कि एक पागल ने उसे मार डाला ! एक महान् अपराध हम कर चुके हैं; दूसरा करेंगे, तो हमारे लिए जहन्नुम में भी जगह नहीं मिलेगी !

गोड्से ! वह नारकीय जीव !—किन्तु हमारे-तुम्हारे हृदयों में बसे ईर्ष्या-द्वेष, हिंसा-प्रतिहिंसा और प्रभुत्व की आकांक्षा का प्रतीक या वह—यदि हम आज भी इसे समझ नहीं पाते, तो हम गये ! हमें कोई बचा नहीं सकता !

गोड्से को हमने पाल रखा था ! हमने उसे नज़रअन्दाज़ किया, बढ़ावा दिया और सत्य का तक़ाज़ा है कि हम कहें—हमने उसे किन्हीं घृणित कार्यों के लिए ही दूध पिला-पिलाकर पोसा था !

अब, जब "इस घर को आग लग गई, घर के चिराग़ से" तो शोर मचा रहे हैं, आँसू गिरा रहे हैं ! इस ढोंग को इस पवित्र और करुण अवसर पर भी तो हम दूर करें !

यदि इतना नहीं किया; तो याद रखो, हमारी-तुम्हारी भी वही हालत होगी, जो ईसा को फाँसी देनेवाली कौम की हुई और हो रही है !

यहूदियों के पास क्या नहीं है—धन, विद्या, बुद्धि, कला, विज्ञान—किस क्षेत्र में उनका बोल-बाला नहीं ? किन्तु, सब होने पर भी इस विशाल संसार में एक इञ्च ज़मीन भी ऐसी नहीं, जिसे वे अपनी शरण-स्थली बता सकें। सावधान हिन्दुस्तान; सावधान ओ गाँधी के हम बेटो !

× × ×

गाँधी, बापू, तुम अमर हो ! अपनी अमरता पर तुमने अपने पवित्र रक्त की मुहर लगा दी ! कोई भी विनाशक शक्ति इस अमरता की ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकती !

इस धरा धाम पर बड़े-बड़े लोग आये—बुद्ध, ईसा महम्मद, मार्क्स ! किन्तु, तुम इन सब में निराले थे ! निराले थे तुम; और निराली थी तुम्हारी राह !

बुद्ध की करुणा, ईसा का बलिदान, महम्मद की हक़ परस्ती और मार्क्स का अनुसंधान—सब का समन्वय हुआ था तुम्हारे अलौकिक व्यक्तित्व में !

वह पुश्त धन्य है, जिसने तुम्हें धरती पर चलते-फिरते देखा; आँधी उठाते और तूफान बरपा करते देखा; आँधियों और तूफ़ानों में भी मुस्कराते देखा और फिर एक मुस्कान-भरी चितवन में शांति की असंख्य किरणें बिखेरते देखा।

तुम इतने बड़े थे, इतने निराले थे कि हम तुम्हें समझ नहीं सके; समझ भी नहीं सकते थे !

किन्तु, तुम नहीं रहे—तुम्हारे चरण-चिन्ह तो हमारी आँखों के सामने अब भी चमकते नज़र आ रहे हैं !

वे चरण-चिन्ह हमारा पथ-प्रदर्शन करेंगे !

उन्हें देखते हुए हम आगे बढ़ेंगे और संसार में एक ऐसा समाज बनायेंगे, जिसमें हिंसा न हो, युद्ध न हों; जिसमें छोटे-बड़े का भेद-भाव न हो; जिसमें दरिद्रता न हो, विलासिता न हो। जहाँ सब समान हों, सब भाई-भाई हों ! जहाँ प्रेम हो, सत्य हो, शांति हो !

राष्ट्र-पिता, तुम अमर थे, अमर हो गये ! हम अपराधी अनाथ बच्चों को आशीर्वाद देते जाओ कि इस पवित्र आदर्श पर हम बढ़ते चलें, बढ़ते चलें।

बापू आज चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है—उपनिषद के ऋषियों के शब्दों में हम तुमसे प्रार्थना कर रहे हैं—

तमसो मा ज्योतिर्गमय !

निबंधमाला

हिंदी में निबंध साहित्य का प्रणयन उस मनोयोग से नहीं हो रहा जिस प्रकार कविता, उपन्यास या कहानी साहित्य का। हिंदी के श्रेष्ठ निबंध अभी उँगलियों पर गिनाये जा सकते हैं। हमारी भाषा में, जो स्वतन्त्र देश की राष्ट्र-भाषा होने जा रही है, यह एक बहुत बड़ा अभाव है। हिंदी के साहित्यकारों के सहयोग से 'किताब महल' उसकी पूर्ति करने जा रहा है।

जिस समय बच्चा कुछ बड़ा होता है उसी समय स्कूल में उससे विभिन्न विषयों पर विवरणात्मक, वर्णनात्मक, आत्म-कथात्मक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक एवं विवेचनात्मक निबंध लिखवाये जाते हैं। कॉलेज में उससे और अधिक गंभीर साहित्यिक निबंधों की अपेक्षा की जाती है। साहित्य का अध्ययन करते समय तो साहित्य के विद्यार्थियों और जिज्ञासुओं को अनेक प्रकार के आलोचनात्मक निबंधों की आवश्यकता होती है। इस कमी को सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ कुछ पूरा करती तो हैं, परन्तु वास्तविक अभाव की पूर्ति तो अधिकारी विद्वानों के ग्रंथों द्वारा ही हो सकती है।

विद्यार्थियोपयोगी निबंध संग्रहों से लेकर मौलिक गंभीर साहित्यिक निबंध-संग्रह इस निबंधमाला में हम प्रकाशित कर रहे हैं। इस प्रकार हमने अपना क्षेत्र और दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक रखा है। विश्वास है हिंदी साहित्य की सेवा में हमारे इस योगदान का अपना स्थान रहेगा।

अब तक के प्रकाशन

विचारधारा	डा० अमरनाथ झा	३॥)
प्रगति और परंपरा	डा० रामविलास शर्मा	२॥)
संस्कृति और साहित्य	,,	३॥)
साहित्य निबंधावलि	राहुल सांकृत्यायन	३॥)
दिमागी गुलामी	,,	॥)
निबंध-प्रबोध	डा० रामरतन भटनागर	२)
प्रबंध-पूर्णिमा	,,	३)
हवा पर	रामवृक्ष बेनीपुरी	१॥)
हमारे कवि १	विश्वम्भर 'मानव'	१)
म[illegible]	रामवृक्ष बेनीपुरी	१॥)

[illegible]लाहाबाद